धरती और आकाश

डा. शम्भुनाथ सिंह

प्रिय भाई रतनलाल शर्मा

को

सस्नेह

[illegible]

१३-२-६२



धरती और आकाश

(परिवर्तित-परिवर्धित संस्करण)

लेखक
डा० शम्भुनाथ सिंह

समकालीन प्रकाशन, वाराणसी

प्रथम संस्करण—१९५३ ई०
द्वितीय संस्करण—१९५९ ई०
तृतीय संस्करण—१९६१ ई०
प्रथम परिवर्तित-परिवर्धित संस्करण—१९६६ ई०

मूल्य—सजिल्द २.२५ रु०
अजिल्द १.७५ रु०

लेखक की ओर से
प्रकाशक
समकालीन प्रकाशन
सी १४/१६०, सत्याग्रह मार्ग, वाराणसी

मुद्रक
बम्बई प्रिण्टिग काटेज, वाराणसी

रंगमंच और नाट्यसाहित्य
के विशेषज्ञ,
संगीत-नाटक अकादमी के
मंत्री,
भाई डा० सुरेश अवस्थी
को :

परिवर्तित संस्करण की भूमिका

'धरती और आकाश' की रचना आज से १५ वर्ष पूर्व हुई थी। नाटक एक विशेष साहित्यिक आयोजन के अवसर पर अभिनीत होने के लिए लिखा गया था। उसका पूर्वाभ्यास भी प्रारम्भ हो गया था किन्तु दुर्भाग्यवश उसके एक प्रमुख पात्र की भूमिका में कार्य करने वाले व्यक्ति का नाटक अभिनीत होने के दो दिन पूर्व देहावसान हो गया और इस तरह नाटक अभिनीत नहीं हो सका। मेरा विचार था कि नाटक प्रकाशित होने के पूर्व इसका एक बार अभिनय अवश्य हो जाय ताकि लेखक के रूप में मैं इसकी मंचीय कठिनाइयों को समझ कर इसमें संशोधन कर लूँ। ऐसा किया भी गया पर वह संशोधित पाण्डुलिपि अभिनेताओं में से ही किसी के पास पड़ी रह गयी। इसी बीच एक प्रकाशक महोदय इस नाटक की मूल पाण्डुलिपि मेरे पास से उठा ले गये। उन्होंने इसे प्रकाशित कर उसका एक संस्करण बेचा और बाद में दिवालिया होकर मुझे बिना बताये इसे एक अन्य प्रकाशक को दे दिया। उस दूसरे प्रकाशक ने मुझे बिना बताये इसका दूसरा संस्करण प्रकाशित कर दिया। पता लगने पर जो पत्राचार हुआ उसे यहाँ लिखने की आवश्यकता नहीं है। इतना ही बता देना पर्याप्त है कि इस नाटक के तीन संस्करण मेरी इच्छा के विरुद्ध हो गये। अत्यधिक व्यस्तता के कारण मैं 'धरती और आकाश' को अपनी इच्छा और कल्पना के अनुरूप रूप न दे सका। इस बीच देश के विभिन्न स्थानों में इसे अभिनीत भी किया गया। कुछ स्थानों पर मैंने स्वयं भी इसका अभिनय देखा और इसकी त्रुटियों को समझा। अन्त में इस निश्चय पर पहुँचा कि इसमें परिवर्तन और संशोधन करना आवश्यक है। परिणामस्वरूप 'धरती और आकाश' का यह चौथा संस्करण, जो प्रथम परिवर्तित और संशोधित संस्करण है, आपके सामने है।

अपने परिवर्तित रूप में यह नाटक बिलकुल नया हो गया है। पहले इसमें चार अंक थे, अब तीन ही अंक हैं। अनेक घटनायें हटा दी गयी हैं, नयी घटनायें जोड़ दी गयी हैं और प्रारम्भ में कई पृष्ठों की नयी सामग्री जोड़ दी गयी है। यह सब कुछ अभिनय की दृष्टि से किया गया है। मेरे विचार में श्रेष्ठ नाटक की एक महत्वपूर्ण कसौटी उसकी अभिनेयता है। यदि कोई नाटक अभिनेय नहीं, केवल पाठ्य है तो उसे नाटक क्यों कहा जाय, संवादात्मक उपन्यास क्यों न कहा जाय? नाटक का सर्वप्रमुख गुण उसकी नाटकीयता है जो कथावस्तु, चरित्रांकन, संवाद, वातावरण, शैली, उद्देश्य और प्रभावान्विति सब में निहित होता है। उपन्यास, कहानी और प्रबन्धकाव्यों में भी ये ही तत्त्व होते हैं किन्तु उनमें नाटकीयता न होने से उन्हें नाटक नहीं कहा जाता। नाटकीयता के कारण ही साहित्य की नाटक या रूपक नामक विधा को दृश्यकाव्य कहा जाता है। नाटकीयता वह तत्त्व है जिसके कारण कथानक में देश, काल और क्रिया की अन्विति आती है जिसे पाश्चात्य नाट्य शास्त्र में 'संकलनत्रय' कहा गया है। इसी तत्त्व के कारण चरित्रांकन में स्पष्टता और वास्तविकता, संवादों में चुस्ती, तीखापन और संक्षिप्तता तथा वातावरण, वेशभूषा आदि के चित्रण में प्रामाणिकता और विश्वसनीयता आती है। इस तरह नाटकीयता का ही अन्तिम फल प्रभावान्विति है। यह नाटकीय प्रभावान्विति नाटक को पढ़ने में उतनी नहीं दिखाई पड़ती जितनी अभिनय में। इस तरह किसी नाटक की सफलता की परीक्षा उसके अभिनय द्वारा ही हो सकती है।

हिन्दी में ऐसे सफल अभिनेय नाटकों का नितान्त अभाव है। पश्चिमी देशों में मध्य युग से ही नाटकों की रचना मुख्यतः अभिनय के लिए होती आ रही है। शेक्सपीयर, जानसन, मोलियर, यहाँ तक कि आधुनिक युग में इब्सन, चेखव और बर्नाड शॉ के नाटकों को उनके अभिनय के कारण ही ख्याति मिली। प्राचीन भारत में भी संस्कृत और प्राकृत नाटकों

की रचना मुख्यतः अभिनय के लिए ही हुआ करती थी। हिन्दी में नाटकों, विशेष कर अभिनेय नाटकों की कमी का कारण रंगमंच का अभाव है। रंगमंच और नाटक एक दूसरे से अन्योन्याश्रित रूप से सम्बद्ध हैं। नाट्यात्मक अनुभूतियों की पूर्ण अभिव्यक्ति रंगमंच पर ही हो सकती है और रंगमंच की विधियों और सीमाओं को जाने बिना नाटक नहीं लिखा जा सकता। रंगमंच की जानकारी रखे बिना यदि कोई लेखक किसी दिन सबेरे उठकर नाटक की रचना करने लगे तो निश्चय ही ऐसा नाटक नाटक न होकर कुछ और हो जायेगा।

प्रत्येक युग में रंगमंच का विधान भिन्न-भिन्न हुआ करता है और उसी विधान के अनुरूप विभिन्न युगों के नाटक भी होते हैं। यूनान में प्राचीन काल में खुले मंच पर नाटकों का अभिनय होता था। इसलिए प्राचीन यूनानी नाटकों में बहुत सी बातें, जो मंचीय दृश्यों द्वारा व्यक्त की जा सकती हैं, कोरस द्वारा सूचित रूप में व्यक्त की जाती थीं। प्राचीन भारत में खुले प्रेक्षास्थल और सुसज्जित रंगमंच की प्रथा थी। इस कारण यहाँ विभिन्न दृश्यों वाले कई अंकों के नाटकों की रचना होती थी। प्राचीन काल में सामन्ती समाजव्यवस्था के अन्तर्गत नाटकों को प्रोत्साहित करने वाला उच्च वर्ग था जिसके पास समय की कमी नहीं थी। वे लोग रात-रात भर बैठ कर नाटक देख सकते थे। फलतः उस काल के नाटक काफी लम्बे होते थे, उनमें संगीत, नृत्य आदि का भी विधान होता था तथा लम्बे सम्वादों की योजना होती थी। औद्योगिक सभ्यता के विकास के साथ ज्यों-ज्यों मध्यवर्ग का प्रभाव बढ़ता गया, सामन्ती संस्कृति भी उत्तरोत्तर बदलती गयी और आधुनिक विचारों के विकास और प्रचार के साथ साहित्यिक विधाओं का स्वरूप भी बदलता गया। इस तरह आधुनिक युग का रंगमंच उत्तरोत्तर यथार्थवादी होता गया। प्राचीन नाटकों में भ्रम और कल्पना का महत्व होता था। मंच पर इतना कह देना ही पर्याप्त होता था कि देखो यह जंगल, पहाड़

या महल है। दर्शक इतने से ही सन्तुष्ट होकर नाटक के कथाव्यापार में रम जाते थे। आधुनिक युग में बौद्धिकता और तार्किकता इतनी बढ़ गयी कि भ्रम और कल्पना के सहारे न तो मंचीय विधान चल सकता था और न नाटक। समय के अभाव और बौद्धिकता के तकाजे के कारण आधुनिक युग का नाटक छोटा होने लगा, उसमें दृश्य-परिवर्तन बहुत कम हो गया, स्वगत-कथन, संगीत, नृत्य, काल्पनिक दृश्यकथन आदि को वर्जित कर दिया गया तथा रंगमंच को पूर्णतः वास्तविक रूप प्रदान किया गया। रंगमंच की वास्तविकता के कारण नाटकों का वास्तविक या यथार्थ-वादी होना भी अनिवार्य हो गया। आधुनिक युग में लोकतान्त्रिक विचारों के विकास के कारण सामान्य मानव का महत्व बढ़ गया, आदर्श चरित्र काल्पनिक समझे जाने लगे और सामाजिकता तथा नैतिकता सम्बन्धी धारणाएँ भी बदल गयीं। इन सब कारणों से नाटक के शिल्प के साथ उसके कथ्य में भी क्रान्तिकारी परिवर्तन हुआ। अब नाटकों के नायक सामान्य व्यक्ति होने लगे, उनमें सामाजिक जीवन की दैनन्दिन समस्याओं तथा सामाजिक असंगतियों को चित्रित किया जाने लगा। आधुनिक समस्याप्रधान और विचारप्रधान नाटकों के प्रादुर्भाव का यही कारण था। इस प्रकार वैचारिक क्रान्ति ने रंगमंच को और रंगमंच ने नाटक के स्वरूप को अत्यधिक प्रभावित किया।

वर्तमान समय में रंगमंच का स्वरूप और भी बदल गया है। वैज्ञानिक और प्राविधिक आविष्कारों के कारण आज का रंगमंच भी ऐसा हो गया है जिस पर कोई भी दृश्य या घटना प्रस्तुत की जा सकती है। आवर्तित रंगमंच के आविष्कार के कारण दृश्य-परिवर्तन सम्बन्धी मंचीय असुविधाएँ दूर हो गयी हैं। ऐसे रंगमंच पर दृश्य-परिवर्तन में समय नष्ट नहीं होता और नाट्याभिनय कम समय में ही समाप्त हो जाता है। विद्युत्-प्रकाश और ध्वनि-अंकन द्वारा मंच पर नदियाँ, समुद्र की लहरें, रात में आती हुई रेलगाड़ी आदि का प्रदर्शन भी संभव हो

गया है। यही नहीं, आधुनिक सभ्यता की कृत्रिमता से ऊब कर फिर खुले रंगमंच का विधान होने लगा है। रंगमंच सम्बन्धी इन विविध प्रयोगों के कारण वर्तमान युग के नाटकों के रूप-शिल्प में बराबर परिवर्तन होता जा रहा है। अब यह धारणा भी हो रही है कि नाटक मंच पर न अभिनीत होकर सड़क पर, पार्क में या बाजार में ही क्यों न अभिनीत हो ? इस धारणा के फलस्वरूप नाटक के पात्र सामान्य जनता से अभिन्न माने जा रहे हैं और अभिनेताओं और दर्शकों के बीच की दूरी को पूर्णतः समाप्त करने का प्रयत्न हो रहा है। इस तरह नेपथ्य और रंगकक्ष को हटाया जा रहा है। अभिनेता दर्शकों के बीच में ही बैठे रहते हैं और अपनी बारी आने पर मंच पर जाकर अपनी भूमिका पूरी करते हैं। वैज्ञानिक और प्राविधिक आविष्कारों के ही साथ मनोविश्लेषणशास्त्र और दर्शनशास्त्र के सिद्धान्तों ने भी आधुनिक रंगमंच तथा नाटक को प्रभावित किया है। योरोप के प्रतीकवादी, अतियथार्थवादी और अस्तित्ववादी नाटककारों ने ऐसे नाटकों की रचना की है जिनमें उपचेतन मन के प्रतीकों, आदिम बिम्बों और चेतना की अँधेरी गहराइयों को प्रतीकात्मक और सांकेतिक क्रियाओं, घटनाओं और वस्तुओं द्वारा अभिव्यक्त किया गया है। ऐसे नाटकों में मंचीय वास्तविकता पर नहीं, केवल कथ्य और अनुभूति के सम्प्रेसण पर ध्यान दिया गया है।

पहले कहा जा चुका है कि हिन्दी में रंगमंच का प्रायः अभाव है। आधुनिक ढंग के रंगमंच तो भारत में अभी प्रचलित ही नहीं हुए हैं। ऐसी स्थिति में हिन्दी में आधुनिक ढंग के नाटक लिखे जायँ, यह सम्भव नहीं है। वैज्ञानिक उपकरणों से सज्जित रंगमंच बहुत खर्चीले होने के कारण भारत जैसे गरीब देश में प्रचलित न हो पाये। भारतीय जनता में सिनेमा के प्रति जितनी अभिरुचि है उतनी नाटकों के प्रति नहीं। इसलिए व्ययसाध्य रंगमंच का निर्माण इस देश में कल्पना की ही वस्तु है। किन्तु औद्योगिक सभ्यता की कृत्रिमता से ऊब कर पश्चिम

में जिस अल्पव्ययसाध्य मंच अथवा खुले रंगमंच का प्रचार हो रहा है उसे तो इस देश में भी आसानी से अपनाया जा सकता है। आवश्यकता केवल साहसपूर्ण प्रयोग करने वालों की है। यदि हिन्दी में खुले मंच का प्रयोग हो अर्थात् किसी खुले मैदान में कुछ चौकियाँ डाल कर बिना पर्दे के नाटक अभिनीत हों तो निश्चय ही दर्शकों की कमी न होगी और नाटक के प्रति जनता की रुचि भी बढ़ेगी। किन्तु कठिनाई यह है कि हिन्दी में ऐसे नाटक कहाँ हैं जो खुले मंच पर खेले जा सकें? यदि रामलीला, रासलीला, नौटंकी, स्वांग आदि के परम्परागत खुले मंच को पुनः ग्रहण करके उसके अनुरूप नाटकों की रचना होने लगे तो निश्चय ही हिन्दी नाटक के क्षेत्र में क्रान्ति हो जायेगी। इस तरह नाटककारों को आधुनिक भावबोध से सम्पन्न नाटक लिखने का अवसर प्राप्त होगा जिससे हिन्दी का नाट्य-साहित्य उत्तरोत्तर समृद्ध होता जायेगा।

'धरती और आकाश' के परिवर्तित संस्करण में अभिनय की दृष्टि से ऐसे ही कुछ नवीन प्रयोग किये गये हैं। आशा है, नाट्याभिनय में अभिरुचि रखने वाले हिन्दी प्रेमी इस नाटक को अभिनीत रूप में देखने का प्रयत्न करेंगे।

शम्भुनाथ सिंह
अध्यक्ष, हिन्दी विभाग,
वाराणसेय संस्कृत विश्वविद्यालय

वाराणसी
१५-७-१९६६

प्रथम संस्करण का आमुख

चिन्ता की बात है कि आज भी हिन्दी का अपना स्वतन्त्र और आधुनिक रीति का रङ्गमंच नहीं बन पाया है। सिनेमा का अवांछित दबाव और स्त्री पात्रों की भूमिका में काम करने वाली स्त्रियों का अभाव, इन दो कारणों से हिन्दी में नाटकों का अभिनय ही नहीं, उनका निर्माण और प्रकाशन भी प्राय: बन्द हो गया है या होता जा रहा है। दूसरी ओर जीवन की परिस्थितियाँ अत्यधिक संघर्षपूर्ण और परिवर्तनशील हो गयी हैं जो नाट्यकला की सामग्री के लिए सर्वाधिक उपयुक्त हैं। आज का हमारा समूचा जीवन ही नाटकीय हो गया है। उसे रङ्गमंच पर यथातथ्य रीति से उतार भर देने की आवश्यकता है। कल्पनाओं और आदर्शों के ताने-बाने बुनने की आज आवश्यकता ही नहीं रह गयी है और न उसके लिए लेखक के पास अवकाश ही है। सामाजिक यथार्थ और उसकी आवश्यकतायें आज इतनी स्पष्ट तथा प्रखर हो गयी हैं कि पुरानी रूढ़िगत लोकरुचि भी अतिशय भावुकता, कल्पनाशीलता, रूमानियत और आदर्शवादिता से दूर हटती जा रही है।

अत: नाट्यसाहित्य की समस्या आज पाश्चात्य और भारतीय नाट्यशैलियों का समन्वय करने या न करने की नहीं है और न यही है कि उसमें बुद्धिवादी रुक्षतायुक्त तात्विक विवेचना हो या सस्ती भावुकता, या उथली रूमानियत और कोरा चमत्कार। आज तो नाटक का उद्देश्य जनजीवन का सीधा चित्र उपस्थित करना, उसके तीव्र संघर्ष और अप्रतिहत गति को प्रभावोत्पादक ढङ्ग से चित्रित करना हो गया है। यह

कार्य तभी सम्पन्न हो सकता है जब नाटककार नाटकों की रचना दृश्य-काव्य समझकर करें, श्रव्य या पाठ्य काव्य समझकर नहीं।

मेरे विचार से आज के युग में अभिनय की सफलता ही नाट्य-कला की सफलता की प्रमुख कसौटी है। अभिनेय नाटक सामाजिक यथार्थ को सामाजिकों के सम्मुख प्रत्यक्ष करने के साथ-साथ सामाजिक आवश्यकताओं की चेतना जितनी शीघ्रता और सफलता से जाग्रत कर सकता है उतना साहित्य का और कोई अङ्ग नहीं कर सकता। दुर्भाग्य-वश हिन्दी का यही अङ्ग सबसे अधिक क्षीण, रुग्ण, और उपेक्षित है। यह अत्यन्त खेद और लज्जा की बात है कि जिस देश के नाटयसाहित्य की परम्परा अत्यन्त पुरानी है, जिसका प्राचीन नाटयसाहित्य अन्यतम और पूर्ण समृद्ध रहा है, उसी की वर्तमान राष्ट्रभाषा के नाटयसाहित्य की दशा इतनी शोचनीय है ! ऐसी बात नहीं है कि हिन्दी भाषा-भाषियों की प्रवृत्ति ही नाटकों के अभिनय की ओर नहीं है। सिनेमा का अत्यधिक प्रसार होने के बाद भी लोकनाट्य—रामलीला, रासलीला, यात्रादल, नौटङ्की आदि—का प्रचलन सामान्य ग्रामीण जनता में अब भी बहुत है। स्कूल-कालेजों में भी नाट्याभिनय की प्रवृत्ति बराबर दिखलाई पड़ती है। अतः आवश्यकता इस बात की है कि ऐसे नाटकों की अधिकाधिक रचना हो जो सामान्य जनता की समस्याओं से सीधे-सीधे जुड़े हों और साथ ही सबके लिये बोधगम्य और प्रभावोत्पादक भी हों। लोकरुचि का परिष्कार और लोकचित्त का विकास ऐसे सफल, कलात्मक और अभिनेय नाटकों द्वारा सबसे अधिक हो सकता है।

किन्तु केवल नाटककारों के बिखरे प्रयत्न से कुछ नहीं हो सकता। अभिनय में रुचि रखने वाले लोगों के सङ्गठन और सक्रिय प्रयत्न से ही इस दिशा में कुछ ठोस कार्य हो सकता है। कुशल अभिनेताओं और निदे-शकों का प्रयत्न यह होना चाहिये कि वे जनता में प्रचलित नाट्यशैलियों

को परिष्कृत करके ग्रहण करें अथवा सादे और कम खर्च वाले और सम्भव हो तो बिना परदे के रङ्गमंच (ओपेन एयर थियेटर) का विकास करें। भारत जैसे गरीब देश में नाटयाभिनय का विकास और प्रसार करने के लिए इसके अतिरिक्त अन्य कोई उपाय नहीं है। हिन्दी रंगमंच पर आज भी पारसी थियेट्रिकल कम्पनियों का बहुत अधिक प्रभाव है। नये ढंग से रंगमंच को यथार्थ जीवन से अभिन्न बनाने की आवश्यकता है, इतना अभिन्न कि वह रंगमंच न मालूम पड़कर यथार्थ वातावरण का अंग प्रतीत हो। उसी तरह अभिनेताओं की वेशभूषा, बातचीत की शैली, उठने-बैठने, चलने-फिरने का तरीका, भावाभिव्यंजन आदि भी इतना यथार्थ और स्वाभाविक होना चाहिये कि वह अभिनय न मालूम पड़े। यदि नाटक इस रीति से अभिनीत हों तो नाट्याभिनय बहुत ही सहजसाध्य, कम खर्चवाला और प्रभावोत्पादक हो जाय और साथ ही सिनेमा का आकर्षण भी बहुत कुछ कम हो जाय। ऐसे रंगमंच और अभिनय-कला के प्रसार के फलस्वरूप नाटकों की रचना भी नयी यथार्थवादी शैली में होने लगेगी। इस प्रकार नाटककार, निदेशक और अभिनेता, इन तीनों के संगठन और सक्रिय सहयोग के आधार पर ही नये रंगमंच का निर्माण और हिन्दी नाट्य साहित्य का समुचित विकास हो सकता है। इस दिशा में जनता और सरकार का भी समान सहयोग अपेक्षित है।

'धरती और आकाश' इसी दिशा में एक लघु प्रयत्न है। इसके वस्तुतत्त्व और उद्देश्य के सम्बन्ध में मुझे कुछ नहीं कहना है और इसके रूप-शिल्प के सम्बन्ध में भी मैं इतना ही कहना चाहता हूँ कि नाटक लिखते समय मेरी दृष्टि प्रमुख रूप से उसको अभिनेय बनाने की ओर ही रही है। प्रसाद के नाटकों की तरह प्रसादोत्तर समस्यानाटकों का भी एक बड़ा दोष यह है कि वे अभिनय की दृष्टि से सफल नहीं हैं। फिर भी 'धरती और आकाश' में समस्यानाटकों की

'तकनीक' एक सीमा तक अपनायी गयी है। व्यक्ति की मानसिक उलझनों का कारण प्रधानरूप से यौन प्रवृत्ति नहीं बल्कि वे सामाजिक सम्बन्ध हैं जिनका आधार विशुद्ध आर्थिक है। इस सत्य को चरित्रों के उत्थान-पतन द्वारा स्पष्ट करने का प्रयत्न इस नाटक में किया गया है। चरित्रों का यह उत्थान-पतन भी सामाजिक दबाव के कारण होता है, बौद्धिक या यौन कारणों से नहीं। इस वस्तुस्थिति की अभिव्यक्ति के कारण इस नाटक की शैली समस्यानाटकों की शैली से बहुत कुछ भिन्न हो गयी है। समाज में सामान्य, विचित्र तथा आदर्श, सभी प्रकार के चरित्र दिखलाई पड़ते हैं। ऐसे अनेक प्रकार के चरित्रों का नियोजन इसमें सहज ही हो गया है। हिन्दी नाट्य-साहित्य में यह कोई सर्वथा मौलिक प्रयोग नहीं है फिर भी नवीनता के अनेक तत्व इसमें मिल जायेंगे। अस्तु :—

'धरती और आकाश' के पाठकों से मेरा निवेदन है कि वे इसे अभिनीत रूप में देखने अथवा इसका अभिनय करने का प्रयत्न करें। साथ ही इसका अभिनय करने वालों से निवेदन है कि वे इसके अभिनय के लिए चाहे अनुमति माँगें या न माँगें किन्तु अभिनय के पूर्व इसकी सूचना मुझे देने की कृपा अवश्य करें।

काशी विद्यापीठ
बुद्ध-पूर्णिमा, सं० २०१० — शम्भुनाथ सिंह
(२७।५।५३)

पात्र

प्रजापति	....	कलाकेन्द्र के आचार्य, जनसेवी
लक्ष्मीपति	....	मिल-मालिक
ज्ञानचन्द्र	....	लक्ष्मीपति का छोटा भाई, दार्शनिक
विज्ञानप्रकाश	....	वैज्ञानिक, विश्वविद्यालय का प्रोफेसर
भूपति सिंह	...	तालुकदार, कलाप्रेमी, कलाकेन्द्र का सहायक
राजेन्द्र	....	नेता, 'देश-सेवक' पत्र का सम्पादक
बसावन	....	मजदूरों का नेता
मैनेजर	....	रानीघाट फैक्टरी का मैनेजर
मुनीम और सेक्रेटरी	....	लक्ष्मीपति के प्राइवेट नौकर
कविता	....	प्रजापति की पुत्री, कवयित्री
कला	....	कविता की छोटी बहन, कलाकर्त्री
भोला, रज्जाक आदि	....	मजदूर
चौधरी सोलई राम	....	किसान

थानेदार, सिपाही, दरवान आदि

धरती और आकाश

प्रथम अंक

[परदा खुलता है। एक व्यक्ति माइक पकड़े खड़ा है। देखने में कोई छोटा-मोटा नेता प्रतीत होता है। खद्दर की धोती और कुर्ता पहने है। श्रोताओं की भीड़ को सम्बोधित करके कहता है।]

देवियों और सज्जनों,

सभा का कार्य अब समाप्त होगा। सभा के संयोजक के नाते यह मेरा पुनीत कर्तव्य है कि मैं आप सब लोगों के प्रति आभार प्रकट करूँ। हमारे जिन वक्ताओं ने अपना अमूल्य समय देकर अपने विचारों से हमें लाभान्वित किया है, हम उनके प्रति अपनी हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करते हैं। साथ ही हम उन लोगों के भी अत्यन्त आभारी हैं जिन्होंने इस सभा में श्रोता के रूप में उपस्थित होकर हमारे इस कार्यक्रम को सफल बनाया है। अब आपके सामने एक अत्यन्त मनोरंजक कार्यक्रम प्रस्तुत किया जायेगा। वह कार्यक्रम है 'धरती और आकाश' नामक नाटक का अभिनय। मैं नाटक और दर्शकों के बीच व्यवधान नहीं बनना चाहता। अतः पुनः आप सब के प्रति आभार प्रकट करते हुए विदा लेता हूँ। नमस्कार।]

[एक पार्श्व से निकल जाता है। दूसरे पार्श्व से वृद्ध व्यक्ति का प्रवेश। खद्दर की धोती, कुर्ता, रेशमी दुपट्टा, सफेद दाढ़ी और लम्बे बाल। हाथ में छड़ी। देखने से कलाकार प्रतीत होता है।]

वृद्ध व्यक्ति—(सबकी ओर देखकर नमस्कार करता हुआ) अभी आपसे कहा गया कि यहाँ नाटक का अभिनय होगा। लेकिन जरा आप अपने हृदय से

पूछिये, क्या आप स्वयं हर क्षण किसी नाटक का अभिनय नहीं करते रहते ? मैं कहता हूँ, आप में से हर व्यक्ति अभिनेता हैं। आप सभी जीवन भर किसी न किसी पात्र की भूमिका पूरी करते रहते हैं। इसलिए, सज्जनों, यहाँ नाटक का नहीं, जीवन का अभिनय किया जायेगा। हम आप का ही जीवन आपके सामने उपस्थित करेंगे। जिसे आप रोज स्वयं करके दिखाते और दूसरों को करते देखते हैं, उसे ही आज इस मंच पर देखेंगे। न जाने कितने नाटकों के अभिनेता आज यहाँ दर्शक के रूप में उपस्थित हैं। हमारे आजके नाटक 'धरती और आकाश' के अभिनेता भी आपही के बीच कहीं न कहीं होंगे।

(दर्शकों की ओर देखता है जैसे किसी को खोज रहा हो। फिर एक व्यक्ति की ओर उंगली से संकेत करता हुआ) ऐ महाशय, जो आप नहीं, वह आपके बगल में बैठे कुर्ता धोती वाले नौजवान—जी हां, आपही से कह रहा हूँ। यहाँ आइए तो! (पार्श्व की ओर संकेत करके) इधर से इधर से!

(वह व्यक्ति मंच पर आता है।)

आपका नाम ? लेकिन छोड़िये ! सज्जनों, अगर मैं इनसे इनका नाम, पता, पेशा वगैरह पूछूँगा तो ये कुछ और ही बतायेंगे मगर मैं आपसे बताता हूँ, ये ज्ञानचन्द हैं, एक क्रांतिकारी दार्शनिक,

वह व्यक्ति—नहीं नहीं, मेरा नाम···(अथवा वास्तविक नाम बताता है) ·······है और मैं······

वृद्ध व्यक्ति—देखिये, मैं नाटक का सूत्रधार हूँ लेकिन तांत्रिक भी हूँ। मैं आदमियों का व्यक्तित्व बदल देता हूँ [उसकी आंखों में घूरता हुआ जोर से डांट कर कहता है] सच बोलिये, क्या आप ज्ञानचन्द नहीं ? मैं कहता हूँ आप इस समय ज्ञानचन्द हैं और सिर्फ ज्ञानचन्द हैं (आवाज नरम करके) और ज्ञानचन्द के सिवा और कुछ नहीं हैं। बोलिये ! बोलिये आप कौन हैं ?

वह व्यक्ति—जी······मेरा नाम ज्ञानचन्द है !

सूत्रधार—हां, अब ठीक है ! तो सज्जनों, ये ज्ञानचन्द हैं। ज्ञानचन्द जी, आप इधर खड़े हो जाइये ! (दर्शकों की भीड़ में किसी को खोजता है। एक जगह

दृष्टि रुक जाती है।) क्यों लक्ष्मीपति जी, आप वहाँ छिपे बैठे हैं? आइये, यहाँ आइये। (वह व्यक्ति आनाकानी करता है।) देखिये, मैं यहीं से पहिचान गया कि आप लक्ष्मीपति हैं। अब आप इनकार नहीं कर सकते। वह व्यक्ति उठ कर पार्श्व से मंच पर आता है। धोती, रेशमी कुर्ता और मारवाड़ी पगड़ी में वह सेठ प्रतीत होता है?) सज्जनों, ये लक्ष्मीपति हैं, मेरा मतलब है मिल मालिक सेठ लक्ष्मीपति। क्यों महाशय, मैं झूठ कह रहा हूँ?

सेठ—जी···नहीं, आप ठीक कह रहे हैं।

सूत्रधार—आप इतना डरते क्यों हैं? क्या कोई गलती की है?

सेठ—देखिये असल बात ये है कि ये मेरी व्यक्तिगत बातें······

सूत्रधार—तो नाटक और होता क्या है? व्यक्तिगत बातों से ही तो नाटक बनता है। बस आप चुप रहिये और वहाँ ज्ञानचन्द के पास खड़े हो जाइये। (सेठ वैसा ही करता है। सूत्रधार फिर भीड़ की ओर देखता है)

सूत्रधार—(कुछ रुक कर, भीड़ में एक स्थान पर संकेत करता हुआ) चौथी पंक्ति में दाहिनी ओर आखिर की दो कुर्सियों पर जो दो सज्जन बैठे हैं कृपया यहाँ चले आवें! (दोनों व्यक्तियों का पार्श्व से प्रवेश। एक चूड़ीदार पाजामा और शेरवानी में तथा दूसरा सूट पहने हुए।) अगर मैं आपको राय साहब भूपति सिंह कहूँ और दूसरे को सम्बोधित करके) आपको डाक्टर विज्ञान प्रकाश तो आप लोगों को आपत्ति तो नहीं होगी? (दोनों चुप, यानी होगी।) देखिये, आप क ख ग कोई भी हो सकते हैं पर जब मैं कहता हूँ कि आप जमीदार भूपति सिंह और आप सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक विज्ञान प्रकाश हैं तो आप वही हैं। (एक से) बोलिये, आप कौन हैं?

पहला व्यक्ति—जी, मैं भूपति सिंह हूँ,

सूत्रधार—(दूसरे से) और आप महाशय!

दूसरा व्यक्ति—मुझे विज्ञान प्रकाश कहते हैं।

सूत्रधार—ठीक है। आप लोग भी खड़े हो जाइए। (श्रोताओं को ओर देखकर दो लड़कियों की ओर संकेत करता हुआ) ओ मेरी बच्चियों, हाँ तुम्हीं दोनों, यहाँ आओ तो ! (दोनों हिचकिचाती हैं) संकोच न करो मेरी बेटियों। आ जाओ। (दोनों मंच पर आती हैं। एक बड़ी, अवस्था करीब २० वर्ष, दूसरी छोटी, अवस्था करीब १५ वर्ष।)

सूत्रधार—(श्रोताओं को सम्बोधित करके) सज्जनो, ये दोनों मेरी बेटियाँ हैं। (बड़ी को दिखाकर) यह है कविता और (छोटी को दिखाकर) इसका नाम कला है। बस इतना ही समझिये कि कविता कविता है और कला कला। (उन दोनों से) जाओ, तुम लोग भी उनके पास खड़ी हो जाओ। (दोनों चली जाती हैं। सूत्रधार की दृष्टि अचानक श्रोताओं की अगली पंक्ति में बैठे एक सज्जन पर पड़ती है।) यह लीजिये, राजेन्द्र जी वहाँ बैठे हैं। अरे भाईजान, आप का काम वहाँ नहीं, यहाँ है। (वह बैठा व्यक्ति खद्दर का कुर्ता, धोती और गान्धी टोपी पहने है। सूत्रधार की बातें सुनकर खड़ा हो जाता है। यह वही व्यक्ति है जो सभा का संयोजक था)

खादीधारी—हमाशय आप भूल करते हैं। मेरा नाम राजेन्द्र नहीं है। इतने लोग गवाह हैं कि अभी अभी जो सभा हुई, मैं उसका संयोजक था मैंने सबको धन्यवाद दिया था।

सूत्रधार—लेकिन इससे यह कहाँ सिद्ध होता है कि आप राजेन्द्र जी नहीं हैं। मैं कहता हूँ आप स्थानीय साप्ताहिक पत्र देश सेवक के सम्पादक और राष्ट्रीय मजदूर संघ के नेता राजेन्द्र जी हैं और इस बात से आप इनकार नहीं कर सकते। खैर, आइए राजेन्द्र जी, आप राजेन्द्र जी हैं। और राजेन्द्र जी की तरह ही यहाँ आइये। हाँ, उधर से। (वह व्यक्ति मंच पर आता है) ठीक है, आप भी सबके साथ खड़े हो जाइये। (फिर मंच पर इकट्ठे लोगों की ओर घूमकर) मेरा ख्याल है, अब सब लोगों ने सुना ही होगा कि इतिहास अपने को दुहराता है। मैं चाहता हूँ कि आज आप लोग अपने इतिहास को दुहराइये।

ज्ञानचन्द -जी नहीं, अव्वलन तो यही गलत है कि इतिहास अपने को दुहराता है। दूसरे हम जो जीवन जो चुके हैं उसे दुहराने लगें तो फिर....

सूत्रधार—(बात काटते हुये) ज्ञानचन्द, मैं समझता हूँ, मुझे भूले न होगे। जानते हो मैं कौन हूँ ?

ज्ञानचन्द जी हाँ, आप आचार्य प्रजापति हैं।

सूत्रधार--हाँ, प्रजापति, मैं तुम सबका निर्माता हूँ। मैं इतिहास पुरुष हूँ। मैं अपने को दुहराता हूँ और तुम सबको दुहराता हूँ। इसी मंच पर बार बार दुहराता हूँ।

कविता --पिताजी, जो जीवन्त है, जो प्राणवान है, वह बार बार दुहराया जाकर भी हर बार नया होता है। हम आज फिर अपने को दुहरायेंगे किन्तु फिर भी हर बार से भिन्न होंगे। कुछ नये, कुछ आगे बढ़ते हुए !

सूत्रधार --सच है, बिलकुल सच है कविता। तो फिर अपने इतिहास उस काल खंड को आज फिर वापस बुलाओ। वह तीन दिन का नाटकीय काल-खण्ड। मगर उस तीन दिन वाले जीवन-नाटक के सभी पात्र तो अभी मंच पर आये हीं। (श्रोताओं की ओर घूम ध्यान से देखता हुआ) देखो भाई, मैं जानता हूँ कि उस घटना से, जिसे हम आज इस मंच पर दुहराने जा रहे हैं, सम्बन्धित सभी व्यक्ति इस भीड़ में इधर उधर बिखरे बैठे हैं। इस बुढ़ापे में मुझे क्यों तकलीफ देना चाहते हो मेरे बच्चों। तुम जानते हो कि तुम्हें यहाँ आना ही है। तो आ जाओ। उठो अपनी अपनी जगह से। [भीड़ में से बारी बारी से उठकर कई व्यक्ति मंच की ओर बढ़ते हैं। प्रजापति सबका परिचय देकर पंक्ति में खड़ा कराते जाते हैं] आओ भाई बसावन ! (श्रोताओं से) देखिये, रानीघाट मिल मजदूर यूनियन के नेता कामरेड बसावन, और ये हैं मिल के मैनेजर यह सेठ लक्ष्मीचन्द के मुनीम हैं, यह उनके व्यक्तिगत सहायक हैं सेक्रेटरी, यह उनके मन्दिर के पुजारी जी हैं, और ये हैं मिल के मजदूर भोला, रज्जाक वगैरह, और यह किसान चौधुरी मोलाई राम। यह हैं दरोगा जी, सिपाही लोग। हाँ भाई, आज कौन सी तारीख है ?

लक्ष्मीपति—जी, आज तो सन्…(जिस वर्ष में नाटक हो रहा है उसे बताते हुए) को…… है (वास्तविक तारीख है)।

सूत्रधार—आप समय से बहुत दूर हट गये हैं लक्ष्मीपति जी। विज्ञान प्रकाश जी, आप बताइये।

विज्ञानप्रकाश—जी, आज तो… मेरा ख्याल है प्रजापति जी हमलोग इस समय सन् १९५० में हैं।

सूत्रधार…जो हाँ, बिलकुल ठीक है! हमलोग इस समय सन् १९५० में हैं। आज १९५० का २० मार्च है।

भूपति—आचार्य जी, आप यह क्या कह रहे हैं?

सूत्रधार—भूलो मत, भूलो मत कि तुम कौन हो, कहाँ हो, कब हो! (भूपति के सामने जाकर उसकी आँखों में घूरता है।)

भूपति—(सचेत होता हुआ) जी हाँ, जी हाँ, आज सन् १९५० का २० मार्च है।

लक्ष्मीपति—अरे, आज तो मुझे बहुत काम है। मुनीम जी, चलिए, जल्दी कीजिए! (दोनों पार्श्व से परदे के पीछे चले जाते हैं।)

भूपति—विज्ञानप्रकाश जी, हम लोगों को भी तो आज सेठ लक्ष्मीपति से मिलने जाना है।

विज्ञानप्रकाश—हाँ, समय हो रहा है, चलिए चलें!

सूत्रधार—तुम सब लोग जाओ अपने अपने काम पर! अखबार के दफ्तर में, मिल के भीतर, सेठ की गद्दी पर, खेतों में, खलिहानों में—सभी अपने अपने कामों में बट जायें। (सब जाने लगते हैं। सूत्रधार उनकी ओर हाथ उठाकर कहता है।) और याद रखो, आज सन् १९५० के मार्च महीने की बीसवीं तारीख है—बीसवीं तारीख—बीसवीं तारीख! (धीरे-धीरे पार्श्व की ओर बढ़ता जाता है) बीसवीं तारीख……बीसवीं तारीख।

[ज्योंही वह बाहर निकलता है, पीछेवाला काला परदा खुल जाता है। सेठ लक्ष्मीपति की गद्दी लगी है। भारतीय ढंग का दफ्तर, यानो मोटा गद्दा, उस पर सफेद चादर, कई मसनदें। बीच को मसनद के सहारे सेठ लक्ष्मीपति बैठा है। पास में एक छोटी सन्दूकची जिस पर टेलीफोन रखा है। गद्दी के एक किनारे मुनीम बही लिख रहा है। गद्दी के बायें और दायें कुर्सियां रखी हैं। टेलीफोन की घन्टी बजती है।]

लक्ष्मीपति—(टेलीफोन का रिसीवर उठाते हुए) सेक्रेटरी अभी नहीं आये मुनोम जी ? "(टेलीफोन मुह-कान से लगाते हुए) हां, जो, हां...... मैं ही लक्ष्मीपति हूँ ! अरे, किरोड़ी मल जी ! जय गोपाल, सब राजी खुशी तो है जा ! ......हां अब तो ठीक है। क्या कहा.... हाँ...खैर कोई बात नहीं अच्छा जी बेचा। हाँ एक हजार गाँठे। हा...हा....हा ! अच्छा छिमा करना जी, जय गोपाल ! (टेलीफोन रख देता है। मुनीम की ओर देखकर) मुनीम जी, सौदा तो अच्छा पटा। कपड़े के बाजार का क्या ठिकाना ? सरकार चाहे लाख कन्ट्रोल करे भीखाराम जी, लेकिन अपने लोगों का व्यापार कभी नहीं रुक सकता, प्रलय के अँधेरे में भी नहीं।

मुनीम—(बही से आँख उठाकर चश्मा ललाट पर चढ़ाते हुए) बल्कि यों कहिये सेठ जी कि अँधेरे में वह और भी तेजी से चलता है ! (हँसता है)

लक्ष्मीपति—(अट्टहास करते हुए) अरे भाई, रोशनी में तो सभी चलते हैं। कोई अँधेरे में चले तब समझें।

मुनीम—लेकिन अँधेरे में जरा गिरने-पड़ने का खतरा.........

लक्ष्मीपति—(बात काटते हुए) हटाओ भी, खतरा भूखों को होता है। खतरे के शिकार वे होते हैं जो कौड़ी-कौड़ी दाँत से पकड़ते हैं। पैसा खर्च करने पर खतरे रास्ता छोड़कर अलग हट जाते हैं।

मुनीम—यह भी ठोक ही कह रहे हैं।

लक्ष्मीपति—ठीक ही नहीं, बिलकुल ठीक कह रहे हैं। खूब दान-पुण्य करो, मन्दिर बनवाओ, स्कूल-कालेज खोलो, घूस दो और फिर देखो कि कहीं कोई खतरा है? तुम तो……(बाहर बरामदे में किसी के पैरों की आवाज। वह चुप हो जाता है। बाहर से एक व्यक्ति झांकता है। सेठ पास में पड़ा एक अखबार उठाकर उसमें आँख गड़ा लेता है। दरवाजे से एक व्यक्ति झाँकता है।)

मुनीम—(आगन्तुक की ओर देखकर) आइये, चले आइये ! (आगन्तुक सामने आ जाता है। वह राजेन्द्र है।)

राजेन्द्र—नमस्कार सेठ जी !

लक्ष्मीपति—(अखबार आंख के सामने से हटा कर उठने की कोशिश करते हुए भी बैठा रह जाता है।) अहा, आप हैं राजेन्द्र जी, आइये, आइये। बैठिये !

राजेन्द्र—(कुर्सी पर बैठते हुए) और कहिये सेठ जी, सब ठीक तो है !

लक्ष्मीपति—सब ठीक ही है। अपना सुनाइए !

राजेन्द्र—क्या सुनाऊँ। मैं तो इधर बड़ी परीशानी में पड़ गया हूँ।

लक्ष्मीपति—क्यों, क्या परीशानी है ?

राजेन्द्र—बात असल में यह है सेठजी कि मैं एक साप्ताहिक पत्र निकालता हूँ। दुर्भाग्यवश अब उसके बन्द होने की नौबत आ गयी है। मेरे पास उसके लिए पर्याप्त पूँजी नहीं है। सोचा आपसे ही…

लक्ष्मीपति—बहुत सुन्दर ! बहुत ही अच्छा सोचा आपने राजेन्द्र जी ! देखिये, इसी को संयोग कहते हैं। अभी थोड़ी देर पहले ठीक यही विचार मेरे मन में भी आया था कि क्यों न कोई अखबार निकाला जाय ! सोचते देर नहीं कि आप आ गये ! खैर, राजेन्द्र जी वह दिन कितना अच्छा होगा जब मेरी पूँजी और आपकी लेखनी के योग से सारे देश में हलचल मच जायेगी।

राजेन्द्र—लेकिन…

लक्ष्मीपति—लेकिन-वेकिन कुछ नहीं राजेन्द्र जी! आप जाइये, और निश्चिन्त होकर पत्र निकालिये। हाँ, प्रोप्राइटर की जगह मेरा नाम दे दीजियेगा।

राजेन्द्र—मगर सेठ जी, आपका नाम देखकर जनता…

लक्ष्मीपति—जनता की बातों का भी कुछ मूल्य होता है राजेन्द्र जी?

राजेन्द्र—देखिये सेठजी, मुझे तो जनता के ही बीच रहकर काम करना पड़ता है। इसलिए अगर आप गुप्तदान के रूप में मेरी सहायता करें तो जनता का मुँह…

लक्ष्मीपति—(फर्श पर उतरकर आवेश में टहलता हुआ) जब देखो तब, जहाँ सुनो वहीं यह शब्द पीछे पड़ा रहता है—जनता…जनता। आखिर मेरे रुपये और आपकी लेखनी की ताकत किस दिन काम आयेगी। अगर हम जनता का मुँह न बन्द कर सके तो हमारी बुद्धि बेकार है।

राजेन्द्र—सो तो ठीक है सेठजी, मगर कुछ बातें शुरू में ही तै हो जानी चाहिये, जिससे बाद में…

लक्ष्मीपति—समझ गया, सब समझ गया! लेकिन राजेन्द्र जी, आपको लीडरी करनी है और मुझे पैसा कमाना है। अखबार एक ऐसा व्यापार है जिससे वे दोनों काम हो सकते हैं। आपने देश के लिए त्याग किया है, आपकी वाणी में शक्ति और कलम में जोर है। जरूरत है सिर्फ आपको अवसर मिलने की। फिर देखिये आप कहाँ से कहाँ पहुँच जाते हैं!

राजेन्द्र—मगर मैं तो निष्काम भाव से देश की सेवा करता हूँ सेठजी! मैंने स्वतन्त्रता की लड़ाई में अपने भौतिक सुखों का बलिदान किया है। मेरा घर-बार नष्ट हो गया, पत्नी और बच्चे मारे-मारे फिरे और मैं जेल की कोठरी में स्वतन्त्रता देवी की आराधना करता रहा। वह साधना सफल हुई और हम स्वतन्त्र हो गये। बस, हमारी एक ही कामना और है…

लक्ष्मीपति— मैं समझता हूँ आपकी कामना बिलकुल स्वाभाविक है राजेन्द्रजी। जनता की ठोस सेवा करने के सिवा आपके मन में कोई कामना नहीं है और इसके लिए आपको अगले चुनाव में एम० एल० ए० होना जरूरी है, ताकि जनता की आवश्यकताएँ पूरी कराने के लिए आप प्रयत्न करते रहें (मुस्कराता है।)

राजेन्द्र—[कुछ सकुचाता हुआ] यदि जनता मेरे ही कंधों पर यह बोझ पटकेगी तब तो कर्तव्य भावना से प्रेरित होकर उसे ढोना ही पड़ेगा। मगर ……

लक्ष्मीपति—मगर जनता आपके कंधों पर यह बोझा तभी डालेगी राजेन्द्र जी, जब आप अपना प्रचार करेंगे। जनता आपके बलिदान, त्याग और तपस्या को नहीं जानती। वह तो उसी को जानती है जो सबसे अधिक ऊँची आवाज में गला फाड़-फाड़कर चिल्लाता है कि मैं ही जनता के हितों का एकमात्र संरक्षक हूँ, उसका एकमात्र प्रतिनिधि हूँ। यह काम पैसे से होगा। पत्र निकालिए, मोटर पर दौड़िए, छोटे-छोटे देश सेवकों की पीठ पर हाथ रखकर उनकी सहायता करके उन्हें अपना सेवक बना लीजिए और फिर देखिए, सारे शहर में आपकी ही तूती बोलती है या नहीं !

राजेन्द्र—[गम्भीर मुद्रा में ओठ पर अँगुली रखकर कुछ सोचता है फिर एकाएक खड़ा होकर चलने के लिए तैयार हो जाता है।] अच्छा, मैं सोचकर…

लक्ष्मीपति—अजी साहब, जाने की क्या जल्दी पड़ी है ? कुछ देर और बैठिए तो सही। हाँ, मैं एक लाख तक खर्च करने को तैयार हूँ। प्रेस मँगाने, नौकर-चाकर रखने आदि की सारी जिम्मेदारी आप पर ही। आपको फिलहाल काम चलाने के लिए पाँच हजार रुपये देता हूँ। मुनीमजी, पाँच हजार इनके नाम लिखिये और मुझे चेकबुक दीजिये। मैं चेक लिख दूँ। (चेक बुक पर

लिख कर फाड़कर देता है। राजेन्द्र बड़े संकोच के साथ उसे लेता और नमस्कार करके चल देता है।)

मुनीम—(राजेन्द्र के जाने के बाद) इस रकम को किस खाते में डालूँ सेठजी ?

लक्ष्मीपति—क्यों ? धर्मादा खाते में डालो।

मुनीम—पर सेठजी, आप तो, आप....

लक्ष्मीपति—(तीव्र दृष्टि डालकर) अरे कुछ कहोगे भी ?

मुनीम—आप तो बिजिनेस की बात कर रहे थे !

लक्ष्मीपति—तो धर्मादा क्या बिजिनेस नहीं है ? यहाँ रहकर भी भीखामल, अब तक घास ही काटते रहे हो क्या ? (फोन की घण्टी बजती है लक्ष्मीपति रिसीवर उठा लेता है) हलो, हाँ, जी हाँ मैं लक्ष्मीपति....हूँ... हूँ... हूँ....हूँ... देखिये, मेरा यह नियम है कि धर्मशाला, मन्दिर, विद्यालय वगैरह मेरी ओर से जहाँ भी बनवाये जाते हैं उनकी एक निजी शैली होती है। उन पर प्राचीन आर्य-संस्कृति की छाप रहती है। आदर्श-सेवा-मण्डल के विद्यालय-भवन के निर्माण के सम्बन्ध में मेरे पास आपके जो प्रतिनिधि आये थे—जी....जी हाँ... वही...वही, मैंने उनसे तीस हजार देने का वादा किया था, पर मैं एक बात कहना भूल गया था। मेरी कम्पनी के एक हिस्सेदार हैं, उन्हीं को उसका ठेका दिया जायेगा। उस शैली के वे विशेषज्ञ हैं। विद्यालय मेरे स्वर्गीय पिताजी की स्मृति में बनेगा जहाँ प्रार्थना और प्रवचन हुआ करेगा। हाँ, एक बात और विद्यालय की प्रबन्ध-समिति में मेरा भी एक प्रतिनिधि रहा करेगा। आपको ये शर्त मंजूर हैं ? जी ?.... अच्छा तो फिर कल आ जाइयेगा।....जी ...यही दस बजे के करीब। और हाँ, इस दान की सूचना देश के सभी पत्रों में भिजवा दीजियेगा।

मेरी जन्मतिथि, व्यापार और कम्पनियों का विवरण आदि सभी उस सूचना में होना चाहिए। नमस्कार। [फोन रखकर उठता है।] भीखामलजी, मैं जरा अन्दर जा रहा हूँ। थोड़ी देर में आता हूँ। (तब तक दरवाजे से अर्धनग्न, कंकालशेष शरणार्थी भीखमंगों का प्रवेश)

भीखमंगे—सेठजी ! भोगवान रोक्खा करेगा सेठ···भूखे···

लक्ष्मीपति—कौन ? कौन हो तुम लोग जी ?

एक भीखमंगा—सेठजी, आमरा लोग शोरनार्थी है, ढाका से भागकर···

लक्ष्मीपति - भागकर ? पाकिस्तान में तो अनाज सस्ता है ! क्यों भाग आये वहाँ से। चलो यहाँ से ! यहाँ कोई सदाब्रत बँटता है ? भागो···भागो यहाँ से । मुनीम जी ! मुनीमजी !

मुनीम– जी, सेठजी !

लक्ष्मीपति—दरवान को बुलाकर इन्हें बाहर निकलवा दीजिये । और उस पर पाँच रुपया जुर्माना कीजिए कि इन्हें भीतर क्यों आने दिया । (भीतर चला जाता है। भिखमंगे डरकर बाहर चले जाते हैं। मुनीम दरवाजा बन्द करके माथा ठोकता है। फिर बही खोलकर उसमें आँखें गड़ा देता है। तब तक बाहर से दरवाजे पर दस्तक होती है ।]

मुनीम—अरे भिखमंगों, सेठ जो भीतर गये । दरवान को बुलाऊँ क्या ? (फिर दस्तक) इन भिखमंगों के मारे तो और भी नाक में दम है। जब देखो तब हाजिर (दरवाजा खोलकर बाहर देखता है तो आश्चर्य से दो कदम पीछे हट जाता है। विज्ञानप्रकाश और भूपति सिंह का प्रवेश)

भूपति——सेठजी नहीं हैं क्या ?

मुनीम—(नम्रता से) जी, हैं जी ! विराजिये । वे अभी आ रहे हैं, भीतर गये हैं ।

भूपति—आप जरा खबर कर दें कि राय साहब भूपति सिंह और

डाक्टर विज्ञानप्रकाश आये हैं । [मुनीम भीतर जाता है] आइए विज्ञान-प्रकाशजी, बैठिये (दोनों बैठते हैं !)

विज्ञानप्रकाश—बड़ी गर्मी है रायसाहब ! (उठकर पंखे का बटन दबाता है ।)

भूपति – आजकल सड़कों पर भीड़ बहुत रहा करती है। ड्राइव करने में कितनी कठिनाई होती है ? वह तो कहिये नई गाड़ी है। अच्छा डाक्टर, कैसा माडेल लगा मेरी गाड़ी का ?

विज्ञानप्रकाश—बिलकुल लेटेस्ट माडेल है रायसाहब ! विलायत में बड़े-बड़े लोगों के पास भी इस माडेल की गाड़ी अभी नहीं पहुँच सकी है। मैं तो घूमकर देखता आ रहा हूँ।

भूपति—मैं तो डाक्टर, एक साल से अधिक कोई गाड़ी नहीं रखता। हर साल गाड़ी बदल देता हूँ। और एक यह सेठ है, कितना रुपया है इसके पास ! मगर मकान देख लो ! वही पुराने जमाने की हवेली।

विज्ञानप्रकाश—इसके रहन-सहन का दर्जा उतना ऊँचा नहीं है जितना आप लोगों का, मगर इतना रुपया देश को आवश्यक वस्तुओं के उत्पादन में लगता है, इतना तो आपको मानना ही पड़ेगा। हमारे देश के पुराने जमीदार और रईस या तो अपने रुपये को जमीन में गाड़कर रखते हैं या फिजूलखर्ची में उड़ाया करते हैं।

भूपति—अरे भाई, तुम भी हमी लोगों के पीछे पड़ गये। सरकार को ही रहने देते।

विज्ञानप्रकाश—जी नहीं रायसाहब ! मैं आपके हित की बात कह रहा हूँ। आज मैंने आपके घर पर कला और साहित्य का जो संग्रह देखा उससे मेरे आश्चर्य और दुख की सीमा नहीं रही। उन चित्रों, मूर्तियों और हस्त-लिखित पुस्तकों को इकट्टा करने में आपके पूर्वजों ने और आपने लाखों रुपये खर्च किये होंगे, पर आपका उनसे लाभ क्या हुआ ?

भूपति—यह कैसी बात कर रहे हो डाक्टर? कला-साहित्य भी क्या लाभ के लिए होते हैं? कला और साहित्य का प्रेम तो एक शौक है, मनोरंजन का साधन है। रईस कहलाने के लिए कलाप्रेमी होना जरूरी है प्रोफेसर साहब!

विज्ञानप्रकाश—आपने मेरा मतलब नहीं समझा। मैं तो कला और साहित्य को निठल्लू लोगों का रोजगार समझता हूँ। इनका समाज के लिए कोई उपयोग नहीं है। इनमें जो लाखों रुपये बरबाद होते हैं यदि उन्हें औद्योगिक उम्नति में लगाया जाय...

[मुनीम के साथ लक्ष्मीपति का हड़बड़ाकर प्रवेश। भूपति और विज्ञान-प्रकाश भी खड़े होकर अभिवादन करते हैं।]

लक्ष्मीपति—(अत्यन्त नम्रता से) नमस्कार, रायसाहब, क्षमा कीजियेगा, आपको देर तक बैठना पड़ा। मैं जरा....

भूपति—अजी, कोई बात नहीं है सेठजी। हम लोग तो ऐसी बातों में लगे थे कि समय का कुछ पता ही न चला। खैर, अब मतलब की बात करें।

लक्ष्मीपति—हाँ, हाँ कहिए! क्या आज्ञा है?

भूपति—सबसे पहले मैं आपका (विज्ञानप्रकाश की ओर इशारा करके) आपसे परिचय करा दूँ। ये हैं डाक्टर विज्ञानप्रकाश जी जिनसे मिलने की आपने इच्छा प्रकट की थी।

लक्ष्मीपति—अरे आप ही हैं? माफ कीजिएगा डाक्टर साहब! आपका नाम तो बहुत सुना था, बस देखा भर नहीं था। इसी से...(नमस्कार करता है।) प्रोफेसर हाथ मिलाने के लिये हाथ बढ़ाते हैं तो लक्ष्मीपति भी लजाकर हाथ बढ़ाता है।)

भूपति—प्रोफेसर साहब की नयी खोजों के बारे में तो आपने पत्रों में पढ़ा होगा सेठजी! इस समय आप अणुशक्ति के संबंध में कुछ खोज कर रहे हैं।

लक्ष्मीपति—सब कुछ सुना है रायसाहब! इसीसे आपने जब कहा कि आपके मित्र हैं तभी मैंने इनसे मिलने की ...मगर....आपने मुझे ही अपने यहाँ बुलवा लिया होता, प्रोफेसर साहब के अमूल्य समय को ..

विज्ञानप्रकाश—कोई बात नहीं सेठजी, मैं तो आप लोगों की सेवा के लिए सदा तत्पर रहता हूँ। सुना है आप कुछ कारखाने खोलने जा रहे हैं।

लक्ष्मीपति—जी, मैं क्या, बस हमारे रायसाहब की कृपा है। सच पूछिए तो मैं इसी काम के लिए आपसे मिलना भी चाहता था डाक्टर साहब! शहर से लगा हुआ रानीघाट का बाजार आप जानते ही होंगे। वहीं मेरा कागज का एक कारखाना है। उसके पास ही मैंने रायसाहब की जमीन पट्टे पर ले रखी है। वहाँ एक फार्म बनाना और चीनी और सीमेण्ट की दो नयी मिलें भी खोलना चाहता हूँ।

भूपति यह सब मैंने बता दिया है सेठजी।

विज्ञानप्रकाश--जी हाँ, सुन चुका हूँ।

लक्ष्मीपति--अच्छा जी, तो इस सारी योजना का मैंने अपने इन्जीनियर से एक नक्शा बनवाया है। देखिये! (आलमारी से नक्शा निकालता है) यह है रानीघाट स्टेशन—उसके पूरब यह है उत्तर दक्षिण बहती हुई नदी और स्टेशन के उत्तर में यह रही मेरी फैक्टरी। रेलवे लाइन के उत्तर ये तीन गाँव हैं जिनका रकबा दस हजार एकड़ है। जमीन तो मैंने लैन्ड एक्वीजिशन ऐक्ट के अनुसार प्राप्त कर ली है। सरकार की कृपा से उस पर कब्जा लेना भी शुरू कर दिया है। अब मैं चाहता हूँ कि फैक्टरियों के बनने का काम शुरू हो जाय। इसमें आपकी—

विज्ञानप्रकाश—मुझे मंजूर है सेठजी, मगर....मैं एकबार खुद जाकर मौके को देखना चाहूँगा।

लक्ष्मीपति—जब आप समय दें मैं आपको ले चलूँ। मेरा उद्देश्य यह है कि तीनों कारखाने साथ ही रहें जिससे हर तरह म लागत कम पड़े। हाँ, एक मदद मैं आपसे और चाहता हूँ....

विज्ञान प्रकाशक—कहिये....

लक्ष्मीपति—यह जरा टेढ़ा काम है। यदि आप चाहें...

(विज्ञान और भूपति दोनों उत्सुक होकर उनकी ओर देखते हैं, सेठ जरा सँभल कर धीरे-धीरे कहता है।) आप तो जानते ही होंगे उन टेढ़ी टोपी वालों को, एक को खुश कीजिए तो दूसरा नाराज हो जाता है। मैंने काफी रुपये खर्च करके काश्तकारों को वेदखल करके कब्जा कराने का हुक्म प्राप्त किया। उधर कुछ जले-भुने लोगों ने कृषि-मन्त्री को सलाह दी है कि यहाँ नगर के लिए सरकारी दुग्धशाला खोली जाय।

विज्ञानप्रकाश—तो इसमें मैं क्या कर सकता हूँ सेठ जी !

भूपति—यही तो कहता हूँ प्रोफेसर साहब, विद्वान आप लोग भले ही हो लें, मगर आप लोगों का मूल्य रुपये वाले ही आँकते हैं।

लक्ष्मीपति—आप तो सरकार की विकास-समिति के सदस्य हैं न ?

विज्ञानप्रकाशक—जी हाँ, हूँ तो।

लक्ष्मीपति—तो आप इस योजना को अनावश्यक बताकर यह कहिए कि देश में चीनी और कागज के उत्पादन की अधिक आवश्यकता है और उस काम में सरकार को पूँजीपतियों की मदद करनी चाहिए।

भूपति—और आज ही संध्या समय सेक्रेटेरियट में विकास समिति की बैठक भी है, क्यों डाक्टर ?

लक्ष्मीपति—मैंने भी सुना है और सच पूछिए तो इसीलिए आपसे मिलना भी चाहता था।

विज्ञानप्रकाश—हाँ, है तो मीटिंग। अच्छी बात है, मैं कोशिश....

लक्ष्मीपति—कोशिश-वोशिश नहीं डाक्टर साहब, आपको यह काम

करना ही होगा। और हाँ, आप से अगर हमारी कम्पनी वैज्ञानिक सलाहकार बनाने की प्रा ना करे तो आप अस्वीकार तो न करेंगे ?

भूपति— इनकी ओर से मैं स्वीकृति देता हूँ सेठजी !

लक्ष्मीपति— (चेकबुक निकालकर लिखता है) और यह लीजिए आज के परिश्रम के लिए पत्रं-पुष्पं।

विज्ञानप्रकाश—(हाथ में चेक लेते हुए) इसकी क्या जरूरत थी। देखिये आप तो एहसान से मुझे....

लक्ष्मीपति—वाह डाक्टर साहब, पाँच हजार की छोटी रकम देते हुए मुझे खद ही शर्म मालूम हो रही है। ऊपर से और शर्मिन्दा न करें।

विज्ञानप्रकाश—अच्छा तो राय साहब, अब हम लोग चलें।

लक्ष्मीपति—नहीं डाक्टर साहब, आप अगर अभी चलकर रानीघाट वाली जमीन देख लें तो विकास समिति की बैठक में कोई मजबूत कदम उठा सकेंगे

भूपति—मगर मुझे तो घर पहुँचने की जल्दी है सेठजी ! हाँ मुझे भी आप से एक दो बातें करनी हैं।

लक्ष्मीपति—अरे हाँ, आपसे तो कुछ बातें ही नहीं हुईं ! देखिये राय साहब मैं भी कितना मतलबी हूँ ! अपना ही रोना रोता रहा। हाँ कहिये क्या ..

भूपति—फैक्टरी के पूरब ओर नदी के किनारे मेरा एक बगीचा है न ? उसमें एक बँगला है...

लक्ष्मीपति—आपका बगीचा ?

भूपति—जी हाँ। मैंने उसे वर्षों से एक बहुत बड़े कलाकार को दे दिया है और उन्होंने उसमें सङ्गीत, नृत्य और साहित्य का विद्यालय खोल रखा है।

लक्ष्मीपति—मगर उसी बगीचे में तो मेरा पावर हाउस बनने जा रहा

है ? (भीतर के दरवाजे से ज्ञानचंद्र का प्रवेश। रुककर बातें सुनता है।)

भूपति—जी हाँ, सुना है और इसीलिए आया भी कि आप अगर उस बगीचे और बँगले को छोड़ दें...

लक्ष्मीपति—भला यह कैसे हो सकता है राय साहब ? आप ही बताइये डाक्टर साहब, हमारे इन्जीनियर का कहना है कि····

ज्ञानचंद्र—(आगे बढ़ कर) पावर हाउस वहीं बनेगा, दूसरी जगह बन ही नहीं सकता ! (विक्षिप्त जैसा जोर-जोर से हँसता है)

लक्ष्मीपति—तुम यहाँ क्यों आये ज्ञानू...तुम....

ज्ञानचंद्र—इसीलिये कि तुमसे और इन्जीनियर से जब बातें हो रहीं थीं तो मैं भी वहाँ था। मगर तुम झूठ क्यों बोलते हो दादा, इन्जीनियर तो चाहता ही नहीं कि वहाँ पावर हाऊस बने—नदी की धारा इधर ही काट रही है।

लक्ष्मीपति—बदतमीज....पागल... (अत्यन्त क्रोध से मुनीम की ओर देखकर) भीखामल जी, यह यहाँ...

मुनीम—भैया जी, आप भीतर चलिये !

ज्ञानचंद्र—नहीं, मैं नहीं जाऊँगा। राय साहब, भैया प्रजापति जी को वहाँ से भगाना चाहते हैं क्योंकि उन्होंने मजदूरों को प्रौढ़ पाठशाला खोल रखी है। ये आपको धोखा देकर...

लक्ष्मीपति—यह तू क्या बक रहा है ज्ञानू ? राय साहब, यह... आप कुछ ख्याल न कीजियेगा। इसका दिमाग कुछ....

(ज्ञानचंद्र की ओर क्रोध से घूरता है)

मुनीम—(ज्ञान से) अरेरे, भैया जी आपकी किताबों को मुन्नू भैया फाड़ रहे हैं, दौड़िये।

ज्ञानचंद्र—अरे, अरे, कहाँ है, कहाँ ?। (दौड़कर निकल जाता है।)

लक्ष्मीपति—मैं तो परेशान हो गया हूँ इस पागल से...हाँ तो राय

साहब, मैं यह कह रहा था...कि...कि....(कुछ सोचता है) क्या कह रह था मैं ? (राय साहब की ओर देखकर) अरे, अरे, राय साहब ! यह आपको...

भूपति—(क्रोध में कांपता है। आँखें लाल हो गयी हैं। गरजता हुआ बोलता है) सेठ जी यह नहीं हो सकता। वह आश्रम आप नहीं ले सकते ! मैं भी देखूँगा। (तेजी से बाहर निकल जाता है)

विज्ञानप्रकाश—राय साहब, मैं भी चलूँगा !

लक्ष्मीपति—नहीं प्रोफेसर साहब, अब आपको कुछ देर रुकना होगा। यह सब क्या हो गया, मैं समझ नहीं पा रहा हूँ ! खैर, अभी तो आप मेरे साथ रानीघाट चलिए। आज ही सब कुछ ठीक कर लेना होगा। (दोनों चलने लगते हैं, त्योंहीं फोन की घण्टी बजती है।)

लक्ष्मीपति—(रिसीवर उठाकर) हलो ! कौन ! मैनेजर साहब ? कहिए क्या खबर है ? (अत्यन्त उत्सुक होकर) अच्छा, भाव बढ़ गया ? तो पूरा स्टाक बेच दीजिए। तुरन्त बेच दीजिए। और देखिए, गोदाम रातोरात खाली करवा कर, कल उसमें आग... समझ गए न ? हिसाब लगाया कुल कितने का फायदा होगा ? कितना ? पाँच लाख का ! अच्छा एक बात और कम्पनी का एकाउन्ट तैयार हो गया ? मैंने कहा था सो हो गया ? अच्छा ... मैं अभी रानीघाट आ रहा हूँ। कल वहाँ का मामला ठीक कर देना है। हाँ... मैं आकर उसका उपाय करता हूँ। कितने हैं बदमास...दस ही हैं न ? तो सादे कागज पर दस्तखत...समझ गए न ? बस बस, मैं डाक्टर विज्ञानप्रकाश को लेकर आ रहा हूँ। वहाँ से हमारे लौट आने के बाद यह सब होना चाहिए। अच्छा जी...। नमस्ते। (फोन रखते हुए) प्रोफेसर साहब, आपके चरण पूजा करने लायक हैं। मेरे घर में आपकी चरण-धूलि पड़ते ही मुझे पांच लाख का फायदा हुआ है। अब आप से क्या छिपाऊँ विज्ञान प्रकाश जी! हा, हा, हा, इस साल मुझे बीस लाख का फायदा हुआ है फिर भी कम्पनी को घाटा ही हुआ है। हा, हा, हा, अब तो

नये कारखाने खुल कर ही रहेंगे प्रोफेसर साहब ! बस मुझे आपकी सहायता भर चाहिए ।

विज्ञानप्रकाश—मैं तो हर तरह से तैयार हूँ सेठ जी ? आप तो जानते हैं, विश्वविद्यालय की प्रोफेसरी में क्या रक्खा है ? एक आधार है टिकने का मैं तो आपकी सेवा....

लक्ष्मीपति—बस, बस, तब तो बाजी मेरे ही हाथ है डाक्टर साहब ! एक बात और है (कान के पास मुँह सटाकर धीरे से) उद्योग-मन्त्री को भी अपने हाथ में कर लिया है। सब रूपचन्द की माया है प्रोफेसर साहब, रूपचन्द की ।

विज्ञानप्रकाश—(न समझते हुए) कौन रूपचन्द ?

लक्ष्मीपति - (ठहाका मारकर हँसता है फिर गम्भीरता से) रूपचन्द को नहीं जानते ? खैर मगर उद्योग-मन्त्री अच्छी तरह जानते हैं उन्हें। अच्छा राजेन्द्र को जानते हैं न, वही 'देशसेवक' का सम्पादक, वह मंत्री महोदय का दाहिना हाथ है। उसे अबकी चुनाव में एम० एल० ए० बनना है। पर है बेचारा गरीब मगर अब एम० एल० ए० हो जायेगा और उद्योग-मन्त्री फिर जीतेंगे। मैं भविष्यवाणी करता हूँ कि वे जीतेंगे। मैं उन्हें जिताऊँगा। क्यों प्रोफेसर साहब ? (फिर हँसता है। विज्ञानप्रकाश केवल हँसी में हँसी मिलाता है, हँसता नहीं) अच्छा, चलिए चला जाय। मुनीम जी, लौटकर आने पर कलक्टर साहब के यहाँ जाना है, नये आये हैं बेचारे . उनकी कुछ भेंट-पूजा होनी चाहिए। पाँच-पाँच सौ की दो बनारसी साड़ियाँ मँगाकर रखिएगा, मेम साहब के लिए। समझे न ? इनकमटैक्स वालों के यहाँ भी आज रूपचन्द को भेज दीजिएगा। (दरवाजे से प्राइवेट सेक्रेटरी का प्रवेश। दोनों को नमस्कार करता है) बस, बस सेक्रेटरी साहब के हाथ भेज दीजिए। सेक्रेटरी साहब, मैं जरा रानीघाट जा रहा हूँ। (जाना चाहता है।)

सेक्रेटरी—सेठजी, आज शाम को भाषण करना है न आपको ?

लक्ष्मीपति—अरे हाँ, उसे तो मैं भूल ही गया था, गांधी-सेवा-मण्डल के अधिवेशन का उद्घाटन करना है। भाषण तो छप गया न ?

सेक्रेटरी—जी हाँ, देखिये (एक पुस्तिका देता है)

लक्ष्मीपति —(उलट-पुलट कर देखता हुआ चौंककर) अरे, इतना बड़ा भाषण ! (कुछ सहम कर) अच्छा, इसे अखबारों में छपने के लिए अभी भेज दीजिए। (कुछ सोचकर) लेकिन—अच्छा, लौट कर आ जाने दीजिए तब भेजियेगा। इस बीच मेरे दान का समाचार फोन से अखबारों को दे दीजिये और हाँ समाचार का शीर्षक आप खुद ही लिखकर भेजियेगा—दानवीर सेठ लक्ष्मीपति रूंगटा का आदर्श दान - आदिवासी विद्यालय के लिए तीस हजार, गांधी-सेवा-मण्डल को पाँच हजार और देखिए, खबर के बीच में मेरे पिछले दानों की भी चर्चा जरूर होनी चाहिए, जैसा कस्तूरबा ट्रस्ट को पचास हजार, गांधी-स्मारक-निधि को एक लाख, समझ गये न ?

सेक्रेटरी —जी हाँ, जी हाँ,

[लक्ष्मीपति और विज्ञानप्रकाश बाहर निकल आते हैं। मुनीम कलम रखकर वही बन्द करता और लम्बी साँस लेकर चश्मे के नीचे से सेक्रेटरी की ओर देखता है।]

सेक्रेटरी—गद्दी पर अपना पोथा पटकते हुए, क्यों मुनीम जी, ऐसे क्यों देख रहे हैं ? क्या आज भी कुछ ...

मुनीम—कुछ नहीं सेक्रेटरी साहब, वही भाषण जरा देखूँ तो !
[सेक्रेटरी मुनीम को एक प्रति देता है। मुनीम उसे उलट-पुलट कर देखता है। हूँ, बहुत अच्छा, बहुत साफ छपाई हुई है। [ज्ञानचन्द्र भीतर वाले दरवाजे पर आकर चुपके से खड़ा हो जाता है। सेक्रेटरी और मुनीम उसे नहीं देखते]] और अक्षर भी काफी मोटे हैं सेक्रेटरी साहब। अच्छा इसे पढ़ियेगा भी आप ही या सेठजी पढ़ेंगे ?

[ज्ञानचन्द्र ठहाका मारकर हँसता, दोनों उसकी ओर सहम कर देखते और खड़े हो जाते हैं। ज्ञानचन्द्र तेजी से आगे बढ़ता और झपटकर

मुनीम के हाथ से भाषण छीनकर फिर जोरों से हँसने लगता है।]

ज्ञानचंद्र—[भाषण का एक अंश जोर से पढ़ता है] "दुखी और पीड़ित मानवता की सेवा ही आज प्रत्येक व्यक्ति के जीवन का लक्ष्य होना चाहिये। माना हमारा देश आज गरीब है, उस पर विपत्तियों के बादल घिर आये हैं, पर यह हमारे अपने वश की बात नहीं है, सब कुछ ईश्वराधीन है। इसीलिए हमें फल की इच्छा किये बगैर सेवा का कर्तव्य करते रहना चाहिये। जनता ही जनार्दन है और उसकी सेवा ही ईश्वर की सबसे बड़ी भक्ति है। अतः भाइयों इस सम्मेलन का उद्घाटन करते हुए मैं आप से निवेदन करूँगा कि आप लोग जनता की सेवा में आज से कमर कस कर लग जाइये। जनता से कहिये कि वह ईश्वर पर विश्वास करे। वही सबका कल्याण करेगा। आइये, हम सब मिलकर ईश्वर से प्रार्थना करें।

'सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु, मा कश्चिद् दुःखभाग् भवेत्॥
ओं, शांतिः—शांतिः—शांतिः॥"

भेड़िये का शान्ति पाठ ...हा हा हा...खूब बहुत.... सच, सेक्रेटरी साहब, आप ने बहुत अच्छा भाषण लिखा है। आप तो एम० ए० पास हैं न! इसीलिए ...हा हा हा...मगर आपने यह भी सोचा कि भाई साहब सम्मेलन में इसे पढ़ भी सकेंगे या नहीं?

मुनीम—मगर छोटे भैया, भाषण तो बहुत साफ है। देखिये तो जरा, कितने मोटे अक्षर हैं! वाह! बिल्कुल सुखसागर की तरह। सेठजी बहुत अच्छी तरह पढ़ लेंगे इसे।

सेक्रेटरी—मैं क्या करता छोटे भैया। सेठजी ने तो मुझसे यही सब लिखने को कहा था।

ज्ञानचंद्र—सच''''बिल्कुल सच है सेक्रेटरी साहब, लेकिन मैं कहता

हूँ, आपने जो कुछ लिखा है, सब गलत है, सफेद झूठ है।

सेक्रेटरी—लेकिन....

ज्ञानचंद्र—(और तेज आवाज में) मैं समझ गया, आप क्या कहने जा रहे हैं। पर आपका एम० ए० पास करना बेकार है, यदि आप किसी के कहे झूठ को सच कह कर प्रचारित करते हैं। कैसी सेवा...? किसकी सेवा? और सेवक भी कौन? हा...हा....हा....सेक्रेटरी साहब, सेवा भेड़ की खाल है जिसे ओढ़कर खूँखार भेड़िये शिकार की खोज में निकलते हैं।

सेक्रेटरी—(कागज-पत्र उठाकर) जी मैं...

ज्ञानचंद्र—ठीक है। मानता हूँ, इसमें आपको कोई गलती नहीं है, आप नौकर हैं, मालिक के गुलाम हैं, आपका अस्तित्व स्वतंत्र नहीं है। माना कि आप कठपुतली हैं जो मालिक के द्वारा निरन्तर नचाई जाती है। मगर यही क्या आपकी सबसे बड़ी गलती नहीं है? आपका मनुष्यत्व, आपका बुद्धि-विवेक, आपका आत्मसम्मान, क्या सब कुछ बिक चुका है? कुछ चाँदी के ठीकरों पर?

सेक्रेटरी (व्याकुल होकर) ज्ञान बाबू, ईश्वर के लिये...

ज्ञानचंद्र—फिर वही ईश्वर! कहाँ है वह ईश्वर? भेड़ियों का प्रवंचक उपदेश है ईश्वर। मेमनों की कातर दृष्टि है ईश्वर, और भेड़ों की निरीह पुकार है ईश्वर। भेड़े ईश्वर का नाम लेकर शांतिपूर्वक भवसागर के पार—भेड़ियों के गले के नीचे—उतरती जाएँगी–बहुत शांति के साथ हा. हा. शांत भेड़े यानी आप मुनीमजी, (दरवान का प्रवेश) यह दरवान और रानीघाट के कारखाने के मजदूर—ये सब भेड़े हैं. 'जी हुजूर, जो सरकार करने वाली भेड़ें। हा .. हा .. हा....

मुनीम—छोटे भैया...दरवान....

ज्ञानचंद्र—दरवान भी भेड़ है, मजबूत, हट्टी-कट्टी, दो पाँवों पर चलने वाली भेड़, "जी हजूर, जी सरकार!,, कह कर सलाम करने वाली भेड़।

क्यों जी ?

दरबान—जी सरकार।

ज्ञानचन्द्र—वाह, कितनी सीधी भेंड़ हो तुम ! बोलो, [आगे बढ़कर उसका गला पकड़कर] बोलो 'मेंऽऽ मेंऽऽ' बोलो नहीं तो गला टोप दूँगा ;

[मुनीम और सेक्रेटरी उसको बचाने के लिए दौड़ते हैं।]

दरबान—[हाथ जोड़कर] हुजूर, मैंने कोई गलती नहीं की, मैं तो बताने आया था कि एक आदमी....

ज्ञानचन्द्र—कोई भेंड़ होगी, जाओ बुला लाओ।

[दरवान चला जाता है, बाहर के दरवाजे से प्रजापति और कविता का प्रवेश]

ज्ञानचन्द्र—[दरवाजे तक जाकर दोनों का स्वागत करते हुए] अरे आप लोग ? हमने तो समझा कि भेड़ें आई हैं ! नौकरी की तलाश करने वाली, चन्दा माँगने वाली या भीख माँगने वाली भेड़ें। [सब हँसते हैं]

प्रजापति—तब तो ज्ञानबाबू ! हम भी भेंड़ ही हैं क्योंकि हम भी आपसे कुछ माँगने ही आए हैं।

ज्ञानचन्द्र—गलत बात आचार्य जी ! आदमी-आदमी के पास माँगने नहीं, कुछ लेने या देने जाता है। वह अपनी शक्ति से लेता और अपनी योग्यता से देता है। आप आदमी हैं, कलाकार हैं, ऋषि हैं, आप दे ही सकते हैं, किसी से कुछ ले नहीं सकते।

[मुनीम बही आदि समेट कर सेफ में रखता, सेक्रेटरी को कुछ रुपये देता और कान में कुछ कहता है। स्वयं भी कुछ रुपये लेकर सेफ बन्द कर देता है। दोनों सबको नमस्कार कर बाहर चले जाते हैं।]

प्रजापति—अच्छा छोड़िए यह सब ज्ञान बाबू। यह मेरी बड़ी बेटी कविता है। और बेटी, ये ही हैं ज्ञानचन्द्र जी।

[दोनों एक दूसरे को एकटक देखते हुए नमस्कार करते हैं।]

कविता—जी, मैं तो आपको पहले ही से जानती हूँ। आपके क्रान्तिकारी

विचारों से मैं बहुत प्रभावित हूँ !

ज्ञानचन्द्र – और मैंने भी आपकी कवितायें पत्र-पत्रिकाओं में पढ़ी हैं, पर यह नहीं जानता था कि आप आचार्य जी की पुत्री हैं।

प्रजापति—बेटी ज्ञान बाबू उच्चकोटि के दार्शनिक और विचारक हैं।

ज्ञानचन्द्र—मैं और दार्शनिक? आप भी क्या कहते हैं? मैं तो पागल हूँ पागल (हँसता है, प्रजापति मुस्कराते हैं।)

कविता—पागल?

ज्ञानचन्द्र—हाँ, पागल। यह मेरे भाई का घृणा से दिया हुआ नाम है। और मेरी भाभी भी बड़े प्यार से पगला कहती हैं! और तो और साहब, मुन्ना भी मुझे पागल चाचा कहकर ही पुकारता है। हा.. हा हा अब आप ही बताइये, मेरे पागल होने में कोई सन्देह है आपको?

कविता—मगर....बाबा...

प्रजापति—बेटी, तब तो यह और जरूरी है कि जो कुछ हम इनसे माँगने आये हैं, बेधड़क माँग लें।

ज्ञानचन्द्र—फिर वही बात! अच्छा लीजिए जो कुछ मेरा है सब आपका हुआ। क्यों? मगर मेरे पास है ही क्या? किताबें और ये शरीर के कपड़े! सम्पत्ति में मेरी एक कौड़ी भी नहीं है क्योंकि मैं पागल हूँ।

प्रजापति—एक वस्तु और आपके पास है और अभी उसे भी आप दे चुके हैं। (हँसते हैं)

ज्ञानचन्द्र—(आश्चर्य से) क्या?

कविता—आप स्वयं।

ज्ञानचन्द्र—[ठहाका मारकर हँसता है] तो लीजिए, मैं यह रहा!

प्रजापति—ऐसे नहीं ज्ञान बाबू? दान करना आसान नहीं है। अपनी पैतृक सम्पत्ति का अधिकार आपने स्वयं पागल बनकर दूसरों को दिया है। उससे भी ऊँचा आपका जो सर्वोत्तम है, मैं उसी को आप से संकल्प कराने आया हूँ।

ज्ञानचन्द्र—[कुछ सोचता हुआ] मैं ...में.... [खड़ा होकर, उत्तेजनापूर्ण स्थिति में टहलता हुआ] मैं समझ गया प्रजापति जी, मैं... मैं . आपको पूर्णरूप से आत्मसमर्पण करने को तैयार हूँ। मगर लाचारी की जगह कौन सी है, दीखती नहीं, पकड़ में नहीं आती । लाचारी की यह कठिन शृंखला .. ।

प्रजापति—मैं जानता हूँ आपकी लाचारी। यह केवल संस्कार है वातावरण का संस्कार ज्ञानबाबू, विचारों और वातावरण के संघर्ष में जबतक वातावरण प्रबल रहता है, विचारक को पागल बनना ही पड़ता है। वेशक आप पागल हैं, मैं भी पागल हूँ, कविता, कला, घूरे, बसावन सभी उसी पागलपन के रास्ते पर बढ़ रहे हैं। मगर हमारे और आपके वातावरण में अन्तर है। अपने वातावरण से विद्रोह कीजियेगा ज्ञानबाबू ? हमें आपके पागलपन को, आपके सर्वोत्तम की जरूरत है।

कविता—और आज ही जरूरत है, आप देर नहीं कर सकते। वचनबद्ध हो चुके हैं ज्ञानबाबू [मुस्कराते हैं]

[ज्ञानचन्द्र सोचता हुआ तेजी से टहलने लगता है]

प्रजापति—ज्ञानबाबू, आपके विचारों को इन ऊँची-ऊँची दिवारों ने बाँध रखा है। आपका विद्रोह आपको पुस्तकों में कैद है। आपकी शक्ति आत्महनन करने वाली हो गयी है। अपने आप से अपने को मुक्त करना ही जीवन का लक्ष्य है, यह आप ही की उक्ति है ज्ञानचन्द्र जी। किन्तु आप अपने को भूल गये हैं हम आपको आपकी याद दिलाने, आपको आपके 'स्व' से स्वतन्त्र करने आये हैं।

कविता—बाबा, चलिए। ज्ञानबाबू अब नहीं रुक सकते। वे हमारे साथ हैं, हमारे साथ चलेंगे। ज्ञानबाबू, हम सब लोग एक साथ चलेंगे, एक साथ काम करेंगे, एक साथ जियेंगे, एक साथ मरेंगे। आज का दिन। आह ... बाबा....ज्ञानबाबू.... । दोनों का हाथ पकड़ कर दरवाजे की ओर खींच ले जाती है]

[परदा गिरता है]

द्वितीय अंक

[रानीघाट का कारखाना। मैनेजर का कमरा। लम्बा आफिस टेबुल, चारों तरफ कुर्सियाँ। खिड़की से बाहर सड़क पर आने-जाने वाले आसानी से देखे जा सकते हैं। सामने की ओर दीवाल घड़ी। एक ओर दीवाल पर लक्ष्मीपति के पिता का फोटो टँगा है। दूसरी ओर कम्पनी के डाइरेक्टरों का ग्रूप फोटो। मेज पर रजिस्टर, फाइलें, फोन, घंटी आदि रखे हैं। परदा हटने पर मैनेजर मेज पर कुछ फाइलों पर हस्ताक्षर करता हुआ दिखाई देता है। क्लर्क सामने खड़ा है और हस्ताक्षर किये हुए कागजों को हटाता जाता है।]

मैनेजर—सिनहा बाबू, इन दसों मजदूरों का हिसाब आज ही चुकता कर दीजिये और देखिये, इनसे कह दीजिए कि चूँकि इन्होंने स्तीफा दे दिया है इसलिए अब वे यहाँ से जा सकते हैं। [घण्टी बजाता है। चपरासी आकर सामने खड़ा हो जाता है। मैनेजर हस्ताक्षर करता रहता है।]

चपरासी—(कुछ देर बाद) हुजूर !

मैनेजर—(ऊपर आँख उठाकर) हाँ बरसाती, दरवान को तो बुलाना जरा।

चपरासी—बहुत अच्छा हुजूर (चला जाता है।)

मैनेजर—[काम खतम करता हुआ] सिनहा बाबू, [खड़ा होकर खिड़की से बाहर की ओर देखता है, फिर क्लर्क की ओर देखकर पास आ जाता है। क्लर्क शून्य दृष्टि से उसकी ओर देखता है।) आपको कितनी तनख्वाह मिलती है ?

क्लर्क—साठ रुपये साहब !

मैनेजर—और कितने लोग हैं घर में ?

क्लर्क —(कुछ उत्साह से) कुल दस खाने वाले हैं साहब और कमाने

वाला अकेला मैं ठहरा।

मैनेजर—ओह ! तब तो बड़ी मुश्किल से काम चलता होगा। अच्छा, चिन्ता करने की जरूरत नहीं। आपकी तनुख्वाह मैं बढ़वा दूँगा। मेहनत और लगन ये दोनों चीजें बाद में चलकर फल देती हैं सिनहा बाबू। मैं आपका विश्वास करता हूँ। देखिये (कुछ धीमी आवाज में) आज की इस बात (मेज की ओर संकेत करके) की किसी के कान तक खबर न जाने पाये। इस बात को बस तीन ही आदमी जानते हैं—सेठजी, मैं और आप। याद रखिए, अगर तरक्की करना चाहते हैं तो ...

[दरवान का प्रवेश। खाकी वर्दी, पगड़ी और हाथ में बन्दूक।]

मैनेजर—देखो जी इतने लोगों को आज से फाटक के भीतर मत घुसने देना, इन्होंने स्तीफा दे दिया है। नाम बता दीजिये सिनहा बाबू !

क्लर्क—कागज से नाम पढ़ता है ! मनोहर, रज्जाक, होरालाल, मँहगू, घूरे, बसावन, भोला सिंह, धनेस पांडे, चन्दन और भोंदू !

मैनेजर—समझ गये ? नाम याद रहेगा ? अच्छा, वह कागज भी ले लो। (क्लर्क कागज देता है दरवान लेकर सलाम करके चला जाता है।

मैनेजर—और देखिये सिनहा बाबू, सेठजी ग्यारह बजे के करीब आने वाले हैं। इसके पहले मैं एक बार प्रजापति के पास हो आना चाहता हूँ।

क्लर्क—जी सुना है कि....

मैनेजर—(उत्सुकता पूर्वक) क्या सुना है ?

क्लर्क—छोटे भैया कल घर छोड़कर...

मैनेजर—आश्रम में चले आये हैं, यही न ? सुना है—मगर इससे क्या ?

क्लर्क—कल शाम को वहाँ मजदूर सभा की स्थापना हुई और ज्ञानबाबू उसके सेक्रेटरी चुने गये हैं।

मैनेजर—(अत्यन्त आश्चर्य से) क्या ? (आँखें फाड़कर देखता है।)

क्लर्क—जी हाँ। मैं भी उस सभा में गया था। वे लोग कम तनख्वाह पाने वाले बाबुओं को भी मजदूर सभा का सदस्य बना रहे हैं।

मैनेजर—क्या कहा? यह हो नहीं सकता।

क्लर्क—मैं सच कहता हूँ मैनेजर साहब! मैं तो यही देखने चला गया था कि कौन लोग उसमें जा रहे हैं—[पास जाकर धीरे से] रमेश बाबू, मानिकचन्द, दीनानाथ सभी मजदूर सभा में शामिल हो गये हैं।

मैनेजर—ऐसी बात? (सोचता हुआ टहलता है) अच्छी बात है। (कुछ रुक कर) सिनहा बाबू, आप भी मजदूर सभा के सदस्य बन जाइये और सभी खबरें...समझ गये न! और हाँ, सेठजी के आने पर उनसे कहकर मैं आपकी तनख्वाह बीस रुपये बढ़वा दूँगा। [सीढ़ी पर किसी के चढ़ने की आवाज। क्लर्क अपना कागज समेट कर बाहर जाने लगता है। बाहर से ज्ञानचन्द्र और कविता का प्रवेश। ज्ञानचन्द पहले से प्रसन्नचित्त और स्फूर्तियुक्त दिखलाई पड़ता है।]

मैनेजर—[दरवाजे की ओर देखता और ज्ञानचन्द को पहचान कर सम्मान के साथ खड़ा हो जाता है।] आइये छोटे बाबू, नमस्कार! इधर इस कुर्सी पर चले आइए। [कुर्सी खिसकाता है।]

ज्ञानचन्द्र—[नमस्कार करता हुआ] देखिये मैनेजर साहब, मैं छोटे बाबू नहीं हूँ, ज्ञानचन्द्र हूँ, महज ज्ञानचन्द्र! छोटे बाबू हा....हा...हा....आपको पता नहीं? छोटे बाबू तो कल मर गये। उनकी लाश सेठ लक्ष्मीपति के घर में किताबों से दफना दी गयी है। बीमार थे बेचारे कुछ दिनों से तो वे पागल हो गये थे न! हा हा हा....

मैनेजर—यह क्या कह रहे हैं ज्ञानबाबू! मैं तो सदा आपको....

ज्ञानचन्द्र—पागल ही समझते रहेंगे! मगर क्यों? मैं पागल हूँ? मैं पागल नहीं हूँ मैनेजर साहब। अब मैं ज्ञानचन्द्र हूँ, मनुष्य ज्ञानचन्द्र। रानीघाट मजदूर सभा का मन्त्री ज्ञानचन्द्र। और ये हैं मजदूरों की प्राणशक्ति

—कुमारी कविता !

मैनेजर—जी हां, जानता हूँ इन्हें। प्रजापति को पुत्री....

ज्ञानचन्द्र—हां हां, बिलकुल ठीक समझा आपने। अच्छा, तो हम लोग मजदूरों की कुछ माँगे लेकर आपके पास आये हैं।

मैनेजर—कहिये, खुशी से कहिये।

कविता–मैनेजर साबब ! हमारी पहली माँग तो यह है कि मजदूर सभा को कम्पनी मजदूरों की प्रतिनिधि संस्था स्वीकार करे। दूसरी माँग यह कि मजदूरों को पिछले तीन वर्षों का बोनस दे, और तीसरी माँग यह कि मजदूरों के बच्चों के लिए निःशुल्क विद्यालय की स्थापना की जाय और उन्हें मुफ्त दूध दिया जाय।

मैनेजर–बस बस, समझ गया। ऐसी और भी अनेक माँगें हो सकती हैं। माँगना तो आसान है जैसे कविता करना। केवल जबान हिलाने की जरूरत पड़ती है। मगर माँगने वालों को अगर देने वालों की जगह कर दिया जाय तो फिर वे आटे-दाल का भाव समझ जांय कविता जी !

ज्ञानचन्द्र—मेरे विचार से तो मैनेजर साहब माँगना और देना दोनों ही आसान हैं, हाँ अगर कोई मुश्किल काम है तो मुफ्तखोरी करना। मजदूर अपना परिश्रम देता है और उसका वाजिब मूल्य माँगता है। दोनों ही काम वह सहज रूप से आसानी से कर सकता है। लेकिन मुफ्तखोर सेठ-साहूकार, मैनेजर और अफसर—वे माँगने के लिए शब्दों का नहीं कैंचो का व्यवहार करते हैं और देना ! देने के नाम पर तो उनकी नानी मरने लगती है। लेकिन....

कविता—खैर, जाने दीजिए इन बातों को। इन माँगों के सम्बन्ध में आप क्या उत्तर देते हैं मैनेजर साहब।

मैनेजर मेरे पास इसका बहुत उचित उतर था कविता जी, लेकिन इस समय वह उत्तर नहीं दूंगा क्योंकि छोटे बाबू ये माँगें लेकर आये हैं।

ज्ञानचन्द्र—(क्रोध से काँपता हुआ कुछ सोचने लगता है। फिर संभल कर) तो इसका मतलब हम यह समझें कि आप हमारी माँगें मानने से इन्कार करते हैं।

मैनेजर—जी नहीं, इन माँगों का उत्तर सेठजी देंगे जो अभी थोड़ी देर में यहाँ आनेवाले हैं। आपलोग तशरीफ रखिये। मैं जरा प्रजापति जी से मिलने आपके आश्रम जा रहा हूँ। बरसाती बरसाती—(घण्टी बजाता है। चपरासी का प्रवेश इन रजिस्टरों और फाइलों को नीचे बड़े बाबू के पास ले जाओ! और हाँ, यहीं रहना, यहाँ से हटना मत। आप लोगों को कोई तकलीफ न होने पावे! [नमस्कार करके चला जाता है। ज्ञान सोचते हुए टहलने लगता, हथेलियों को रगड़ता, मुठ्ठी बाँधता जैसे कुछ निश्चय कर रहा हो। कविता खिड़की के पास जाकर आसमान की ओर देखती, तन्मय हो जाती और अचानक ज्ञानचन्द्र की ओर घूमकर कहती है।]

कविता—ज्ञान बाबू देखिए तो उस ओर क्षितिज पर बादल उठ रहे हैं। निर्मल आकाश और हरियाली से भरी हुई धरती के बीच उमड़ते-घुमड़ते बादलों में मन जैसे बादल बनकर उड़ जाना चाहता है। (ज्ञानचन्द्र कुछ नहीं सुनता।)

ज्ञानचन्द्र—(चौंककर) कविता, चलो यहाँ से। मेरा दम घुट रहा है यहाँ।

कविता—यह आप क्या कह रहे हैं? बिना सेठजी से बातें किये आप नहीं जा सकते। बहुत बड़ा उत्तरदायित्व अपने कन्धों पर लिया है आपने ज्ञान बाबू! उसे अन्त तक ढोना होगा। आइये दिखाऊँ आपको (उसे खींचकर खिड़की के पास ले जाती है) वह देखिये, अनन्त आकाश की गोद में सोई शान्त धरती। पेड़-पौधों, फल-फूलों और जीव-जन्तुओं का भार सँभालने वाली धरती अपना कर्तव्य क्या उन्माद के उन क्षणों में भी भूल सकी है ज्ञानबाबू। आकाश धरती के साथ ही उसके उत्तरदायित्व-भार को भी अपने निराकार किन्तु असीम बाँहों में समेटे हुए है। उत्तरदायित्व

बहन करने का ही दूसरा नाम जीवन है, ज्ञानबाबू !

ज्ञानचन्द्र—उत्तरदायित्व ! कविता, मुझे तो ऐसा लग रहा है कि यह भार मेरे कन्धों पर डालकर मेरा निष्क्रिय बोझ भी तुमने अपने ही कन्धों पर डाल लिया है। तुम मुझे गङ्गा की उदार निर्मल धारा-सी लग रही हो कविता, जिसमें नौका की तरह मैं बहा जा रहा हूँ और जो उत्तरदायित्व मुझ में भर दिया गया है वह भी सहज ही मेरे साथ तिरता चला जा रहा है। लेकिन यह तो असह्य है कविता ! तुमने और प्रजापति जी ने मुझे मेरे अपनेपन से स्वतंत्र किया है। फिर भी मैं निष्क्रिय क्यों हूँ ? मैं नील स्तब्ध शून्य आकाश-सा निष्क्रिय नहीं रहना चाहता। बादलों में भरे हुए, विद्युत और वज्रनिर्घोष से स्पन्दित आकाश जैसा क्रियाशील बनना चाहता हूँ।

कविता—मैं भी यही चाहती हूँ ज्ञान बाबू ! आप पुरुष हैं, आप में अनन्त आकाश जैसी क्षमता है किन्तु आकाश को स्पन्दित तो धरती ही करती है न ! वे स्फीत मेघ धरती की उमड़ती-घुमड़ती अभिलाषायें नहीं तो और क्या हैं ? आकाश उन्हीं को धारण कर अपने शब्द का प्रसार और विस्तार करता है।

ज्ञानचन्द्र—आकाश और धरती ! कविता, तुम स्वप्नलोक में विचर रही हो शायद। आकाश और धरती मिल नहीं सकते। (खिड़की के बाहर उँगली से इंगित करता हुआ।) ये मिलों की ऊपर उठी हुई चिमनियाँ, ये ऊँचे महल धरती और आकाश के बीच व्यवधान हैं। आकाश धरती पर नहीं उतर पाता कविता, पहले उन उँचाईयों को गिराना होगा, इन बाधाओं को दूर करना होगा। हमें धरती को सम बनाना होगा कविता। तभी धरती आकाश का आलिंगन कर सकेगी।

कविता—सो तो करना ही होगा। करना ही होगा ज्ञानबाबू ! धरती के लालों की भूख-प्यास आकाश देखकर नहीं मिट सकती। उन्हें तो ठोस धरती का अन्न-फल-फूल पहले मिलना चाहिये। आकाश का इन्द्रधनुष उन के गले का हार तभी बन सकेगा जब वे धरती के स्वामी होंगे—इन

मिलों-मकानों के स्वामी होंगे....(ज्ञान की दृष्टि दीवार पर लगी अपने पिता की तस्वीर पर पड़ती है। वह एक टक उसे देखने लगता है। कविता की दृष्टि भी उसकी ओर जाती है। वह आगे बढ़कर ज्ञान की ओर गौर से देखती है।)

कविता—(सहमकर) 'ज्ञानबाबू! [ज्ञान चुप, विक्षिप्त सा तस्वीर की ओर देखता है!]

कविता—क्या बात है ज्ञानबाबू! वह किसकी तस्वीर...(ज्ञान विक्षिप्त-सा हँसता है। चपरासी जो दरवाजे पर स्टूल पर बैठा ऊँघ रहा है, ठहाका सुनकर लुढ़कता-सा उठ खड़ा होता है।)

ज्ञानचन्द्र—(चपरासी से) ऐ, इधर आओ! चलो!

चपरासी—(डरता हुआ सामने आकर) हुजूर!

ज्ञानचन्द्र—(डाँटकर) हुजूर नहीं ज्ञानचन्द्र! देखो, उतारो उस तस्वीर को।

[चपरासी कुर्सी लगाकर फोटो उतारता है। ज्ञानचन्द्र झपटकर उसे छीन लेता है।]

ज्ञानचन्द्र—देखो इसे, और मुझे देखो। चेहरा मिलता है?

चपरासी—जी हाँ, हू-बहू मिलता है। यही, जरा....।

ज्ञानचन्द्र—क्या?

चपरासी—यही कि यह तस्वीर आपके बुढ़ापे की मालूम पड़ती है सरकार!

(ज्ञानचन्द्र और कविता दोनों ही जोर से हँस पड़ते हैं।)

ज्ञानचन्द्र—(गम्भीर होकर) कविता यह मेरे पिताजी की तस्वीर है—इस मिल के जन्मदाता और मालिक सेठ मूलचन्द की।

कविता—(गौर से देखती हुई) अच्छा!

ज्ञानचन्द्र—अच्छा नहीं कविता, बुरा, बहुत बुरा हुआ! यह तस्वीर बताती है कि मैं एक सेठ का लड़का हूँ। और....

कविता—मगर [चपरासी दौड़कर नीचे चला जाता है ।]

ज्ञानचन्द्र—और तस्वीर यह बताती है कविता, कि मैं भी इस फैक्टरी का मालिक हूँ...मैं भी सेठ हूँ, मैं भी डाकू, लुटेरा, अन्यायी....

कविता—मगर आपको यह हो क्या गया है ज्ञानबाबू ! आप इतने उत्तेजित क्यों हो रहे हैं !

ज्ञानचन्द्र—पूछती हो, हो क्या गया है ? मैं आज सचमुच पागल हो रहा हूँ कविता, मेरी हड्डियों को चूर-चूर कर मेरा उन्माद आज बाहर निकल आना चाहता है। और यह तस्वीर ! [जोर से जमीन पर पटक देता है ! शीशा आवाज करता हुआ चूर-चूर हो जाता है ।] यह मुझे याद दिलाती है कि मैं भी सेठ हूँ—(तब तक आगे-आगे चपरासी और पीछे-पीछे दफ्तर के कुछ बाबूओं का प्रवेश ।) मैं ही इस फैक्टरी का मालिक हूँ, आप सब लोग पहचान लीजिए मुझे —

कविता—ज्ञानबाबू, चलिए यहाँ से ।

ज्ञानचन्द्र—मैं जाऊँ ? कहाँ जाऊँ ? मैं तो अपनी फैक्टरी में हूँ। इस फैक्टरी का मालिक मैं...और आप लोग कौन हैं ?

सिनहा—जी मेरा नाम सिनहा, ये क्लर्क और ये दफ्तर के बड़े बाबू, यह हैं सेल्स मैनेजर, ये हाजिरी बाबू, ये....

ज्ञानचन्द्र—बस बस आप लोग पहचान लीजिये मुझे। मैं इस फैक्टरी का मालिक हूँ। और मुझे ही क्यों, आप अपने को भी पहचानिये ! आप सब लोग, आप में से हर एक इस फैक्टरी का मालिक है ! चपरासी, दरवान, मजदूर, क्लर्क, छोटे-मोटे अफसर सभी का इस फैक्टरी पर बराबर अधिकार है । मेरी आज्ञा है—और

[बाहर कार का भोंपू सुनाई पड़ता है। चपरासी खिड़की से झाँककर देखता है—फिर घबराकर कहता है—"सेठजी आ गये।" फिर सीढ़ी की ओर भागता है । सभी कर्मचारी घबराकर जाना चाहते हैं ।]

ज्ञानचन्द्र—(तड़पकर) नहीं, आप लोग नहीं जा सकते। सेठजी से

डरकर भागना चाहते हैं ? इस फैक्टरी को चलाने वाले—इसके असली मालिक आप हैं। सेठ आपके अधिकारों को छीनने वाला, आपके मुँह से आपकी रोटी छीनने वाला है, वह [दरवाजे से सेठ लक्ष्मीपति, डाक्टर विज्ञानप्रकाश और सेक्रेटरी प्रवेश करते और खड़े होकर सुनते हैं।] मजदूरों की मेहनत का शोषण करने वाला वह हत्यारा है—मेरा—आपका—किसानों और मजदूरों का हत्यारा ...

लक्ष्मीपति—[आगे बढ़कर गम्भीर आवाज में] खबरदार जो आगे बोले—बदतमीज, पागल,....मेरे दफ्तर में यह क्या हुल्लड़ मचा रखा है तुमने ? (क्लर्कों से) और आप लोग यहाँ क्यों आये ? क्यों आये यहाँ ? [सभी चम्पत हो जाते हैं। कविता से] और आप भी इसी की तरह पागल तो नहीं हैं न ? खासी भली चङ्गी तो दीख रही हैं ? आप लोगों ने इस दफ्तर को खाला का घर समझ लिया है शायद !

कविता—सेठजी ! हम मजदूर सभा की ओर से मजदूरों की माँगें लेकर आपके पास आये हैं।

लक्ष्मीपति—मजदूर हम से बातें कर लेंगे। आप अपनी लीडरी अपने घर रखिये देवी जी। मजदूर हमारे नौकर हैं, मैं इस फैक्टरी का मालिक हूँ आप कौन हैं ?

ज्ञानचन्द्र—और यह न भूलिए भाई साहब कि मैं भी आपका आधे का हिस्सेदार हूँ। इस फैक्टरी के मालिक अकेले आप हीनहीं, मैं भी हूँ...

लक्ष्मीपति—[ठहाका मारकर हँसता हुआ] कल के छोकरे भी तीसमारखाँ बनने लगे ? हा....हा....मालिक....हाँ हाँ, मालिक तू जरूर है, लेकिन कारखाने का नहीं, पागलखाने का ! घबराओ मत, कल ही मैं तुम्हें पागलखाने का मालिक बनवाने का प्रबन्ध किये देता हूँ। [ज्ञानचन्द्र क्रोध से काँपता हुआ कुछ कहना ही चाहता है पर कविता उसे रोककर खुद कहती है।]

कविता—देखिये सेठजी, लगता है, इस समय आप क्रोध में

हमारी माँगे नहीं सुनना चाहते। पर याद रखियेगा, हमारी माँगें अगर पन्द्रह दिन के अन्दर पूरी न हुई तो हमारे पास हड़ताल करने के सिवा और कोई रास्ता नहीं रह जायेगा। चलिये ज्ञानबाबू! [बाँह पकड़कर खीच ले जाती है दोनों बाहर निकल जाते हैं।]

लक्ष्मीपति—(आवेश में टहलते हुए) इस पागल ने तो नाक में दम कर दिया है प्रोफेसर साहब! और जरा इन रँगे सियारों को तो देखिये, उसे पकड़कर यहाँ ले आये हैं। और तो और उसे मजदूर सभा का मन्त्री भी बना दिया है। टट्टी की ओट में शिकार खेलना चाहता है! मगर मैं भी ईंटे-रोड़े को रास्ते से हटाकर ही दम लूँगा!

विज्ञानप्रकाश—मगर सेठजी, ज्ञानचन्द्रजी निरे पागल नहीं मालूम पड़ते, उनकी बातें तो....

लक्ष्मीपति—अगर वह पागल भी नहीं है प्रोफेसर साहब, मैं तो उसे (मेज पर मुक्का मारकर) पागल बनाकर दमलूँगा।

[कुर्सी पर बैठकर फोन उठाता और नम्बर मिलाता है]

हलो—साहब हैं ? मैं सेठ लक्ष्मीचन्द बोल रहा हूँ। नहीं भाई इतना वक्त नहीं है। अगर अभी बात हो सके तो अच्छा हो, बहुत जरूरी काम है। [कुछ देर रुकता है।]

हलो, कलक्टर साहब? जी, मैं सेठ लक्ष्मीचन्द हूँ। हुजूर, मैं कल आपकी सेवा में हाजिर हुआ था। हाँ तो बात यह है हजूर कि मेरा एक छोटा भाई है—वह पिछले कई वर्षों से पागल हो गया है। बहुत दारू-दवा हुई, देश-विदेश के सभी विशेषज्ञों से सलाह ली जा चुकी है। सबने उसे असाध्य रोगी कहकर जबाब दे दिया है। फिर भी कोई बात नहीं थी, घर में पड़ा रह सकता था। मगर हुजूर अब वह घर छोड़कर यहाँ रानीघाट में चला आया है! दीवाना बना घूम रहा है और उसके कारण पब्लिक की जान का खतरा उत्पन्न हो गया है। अभी कल मेरे दरवान का गला दबोच रहा था। वह तो खैर हुई, हमारे मुनीम और सेक्रेटरी ने उसे

बचा लिया। आज हमारे मैनेजर के आफिस में घुस आया था। उस बेचारे ने तो भागकर अपनी जान बचाई मगर फिर वह आफिस में घुसकर गड़बड़ी मचाने लगा। हलो ...जी...बहुत अच्छा हुजूर मैं दरख्वास्त लिखकर भेज देता हूँ। आज ही। अच्छा कल ही सही ...लेकिन हुजूर वह बिना पुलिस फोर्स के . जी बात यह है कि मेरे कुछ दुश्मन उसे ढाल बनाकर अपनी गोटी लाल करना चाहते हैं। वे लोग गड़बड़ी कर सकते हैं हुजूर। जी हाँ, जी हाँ, अच्छा नमस्कार [फोन रखकर] चलिये यह काँटा भी दूर हुआ। सेक्रेटरी साहब, सुना जो मैंने कलक्टर साहब से कहा ?

सेक्रेटरी—जी हाँ ?

सेठ—तो नीचे जाकर दरख्वास्त लिखकर टाइप करा लाइये अभी।

सेक्रेटरी—बहुत अच्छा ! [चला जाता है]

लक्ष्मीपति—हा....हा हा...हा...प्रोफेसर साहब, अब हम लोगों को अपनी योजना जल्द-से-जल्द शुरू कर देनी चाहिये। आज ही खबर आयी है कि नयी फैक्टरी की मशीनें बम्बई पहुँच गयी हैं। हमारे इन्जीनियर से तो आप की बातें हो ही चुकी हैं ?

विज्ञानप्रकाश—जी हाँ इन्जीनियर साहब ने बहुत ठीक नक्शा बनाया है। पावर हाउस इस समय जहाँ है वहीं रहने देना ठीक होगा। मेरे विचार से तो प्रजापतिजी के आश्रम को छीनने के चक्कर में आप न फँसिये। आखिर झगड़ा बढ़ाने से फायदा ही क्या ?

लक्ष्मीपति—प्रोफेसर साहब, मालूम होता है यह सब तमाशा देखकर आप डर गये ! अरे भाई, हम लोगों को तो यह सब रोज ही करना पड़ता है। छोटा-से-छोटा काँटा भी पाँव का नासूर बन सकता है प्रोफेसर साहब ! शुरू में ही उसे निर्दयतापूर्वक निकाल देना दूरदर्शिता है। खैर, आपने विकास-समिति में मेरे लिए जो कुछ किया उसके लिए मैं आपका बहुत कृतज्ञ हूँ। अगर आपने मेरी सहायता न की होती तो मेरे किये तो कुछ भी न होता।

विज्ञानप्रकाश - नहीं सेठजी, और लोग भी आप ही के पक्ष में थे।

लक्ष्मीपति—(बहुत जोर से हँसता है) कल मैंने कहा था न प्रोफेसर साहब, सब रूपचन्द की माया है। रुपया कमाने के लिए शुरू में बहुत-सा रुपया इन सब कामों में खर्च करना आवश्यक होता है।

[बाहर सड़क से जोर-जोर से अखबार बेचने वाले की आवाज—"लीजिये, साप्ताहिक 'देशसेवक' आ गया। सेठ लक्ष्मीपति का आदर्श दान—ताजा खबरें पढ़िये।" सेठ खिड़की से बाहर झाँकता है। फिर आतुरतापूर्वक चपरासी को बुलाता है।]

लक्ष्मीपति—(चपरासी दौड़ता हुआ सामने आता है।) दौड़कर सड़क पर से एक अखबार तो खरीद लाओ, जल्दी जाओ (चपरासी चला जाता है।) देखा प्रोफेसर साहब ! यह भी रूपचन्द की ही माया है। ह....ह...ह ....प्रोफेसर साहब अखबार हमारे हाथ में है, नेता हमारे हाथ में हैं, सरकारी अफसर हमारे हाथ में हैं और आप जैसे विद्वानों की सहायता भी हमें प्राप्त ही है। फिर हम क्या नहीं कर सकते प्रोफेसर साहब ! सब कुछ कर सकते हैं। हमारी नयी फैक्टरियाँ अब बनकर रहेंगी।

[चपरासी दौड़ा हुआ अखबार लेकर आता है। लक्ष्मीपति खड़ा होकर टहलता हुआ जोर-जोर से शीर्षक पढ़ने लगता है। एकाएक अखबार मेज पर पटक देता है।]

लक्ष्मीपति—प्रोफेसर साहब, हजारों आदमी इस अखबार को पढ़ेंगे। अब मेरी उदारता में भला किसी को सन्देह होगा ? मैं दावे के साथ कहता हूँ प्रोफेसर साहब ! सरकार मेरा साथ दे रही है और जनता भी साथ देगी, ये मजदूर और किसान ! पब्लिक इन्हें नहीं जानती, वह तो सरकार को

जानती है, लीडरों को जानती है, अखबारवालों को जानती है, पैसे वालों को जानती है।

विज्ञानप्रकाश—लेकिन आज के युग में सेठजी....

लक्ष्मीपति—कुछ नहीं प्रोफेसर साहब आज के युग में रुपया ही सब कुछ है। रुपयों से सब कुछ किया जा सकता है—अगर पूँजी न होती तो आपका विज्ञान किस काम आता। पूँजी के बिना विज्ञान, राजनीति, दर्शन सब बेकार हैं। कला, साहित्य, विज्ञान सब पूँजी के गुलाम हैं प्रोफेसर साहब !

[सीढ़ी पर कुछ लोगों के चढ़ने की आवाज। लक्ष्मीपति और विज्ञानप्रकाश उत्सुकतापूर्वक देखने लगते हैं—दरवाजे से मैनेजर, प्रजापति और रायसाहब का प्रवेश। दोनो उठकर नमस्कार करते हैं।]

लक्ष्मीपति—आइये रायसाहब, तशरीफ रखिये। आप तो कल यों ही मुझसे नाराज होकर चले गये।

विज्ञानप्रकाश—राय साहब ! आपका कल का व्यवहार मेरी समझ में नहीं आया। आपने इस बात पर ध्यान नहीं दिया कि आज देश का उद्योगीकरण कितना आवश्यक है ? देश की आवश्यकतायें पूरी करने के लिए हम कब तक दूसरे देशों का मुँह ताकते रहेंगे ?

भूपति—किन्तु प्रोफेसर साहब ! उद्योग धन्धों के विकास के लिए साहित्य-कला का गला तो नहीं घोटा जा सकता ?

लक्ष्मीपति—हम साहित्य-कला का गला तो नहीं घोंटते रायसाहब ! हम तो उनकी मदद करने के लिए हर तरह तैयार हैं। [अखबार उठाकर दिखाते हुए] यह देखिये ? समाजसेवा और शिक्षा के लिए हमने कितना दान दिया है। प्रजापति के आश्रम के लिए भी हम सब कुछ करने को तैयार हैं। हमारी शर्त तो बस यही है कि उनका आश्रम यहाँ न रहे—वे जहाँ कहें, उनके आश्रम के लिए जमीन खरीद सकता हूँ, मकान बनवा सकता हूँ किन्तु आप लोगों ने न जाने क्यों यह हठ पकड़ लिया है कि आश्रम

वहीं रहेगा जब कि आप जानते हैं कि हमारी नयी फैक्टररियों के लिए 'पावर-हाउस' वहीं बनने वाला है ।

विज्ञानप्रकाश—राय साहब ! सेठ जी जब इतना करने के लिए तैयार हैं तो अब तो आप लोगों को इनकी बात मान ही लेनी चाहिए । साहित्य और कला तो शौक और फुर्सत की चीजें हैं रायसाहब ! और मैं तो उन्हें निठल्लुओं का पेशा मानता हूँ। देश की जनता का पेट भरना, उसकी जरूरत की चीजों का उत्पादन करना ही देश की पहली आवश्यकता है और...

प्रजापति—(खड़े होकर—गम्भीर मुद्रा में) प्रोफेसर साहब, रोटी और कपड़ा ही सब कुछ नहीं है। पेट तो जानवर भी भर लेता है । लेकिन मनुष्य ! वह पशु से बहुत ऊपर है प्रोफेसर साहब ! आपने विज्ञान का गलत अध्ययन किया है। भौतिकवादवाद ने आपको अन्धा बना दिया है। साहित्य और कला के बगैर मनुष्य मनुष्य नहीं हो सकता । मुझे बहुत दुख है कि आप जैसे विद्वान् भी आज पूँजी के गुलाम हो रहे हैं।

विज्ञानप्रकाश—उत्तेजित होकर कड़े शब्दों का व्यवहार करने से मैं अपने विचारों को नहीं बदल सकता आचार्य जी । आप स्वयँ बताइए ! विज्ञान मनुष्य जाति का कल्याण करने वाला, उसके परिश्रम को कम करने वाला और उत्पादन को हजारगुना बढ़ा देने वाला है या नहीं ? [लक्ष्मीपति की बाँछें खिल उठतीं हैं वह मुस्कराने लगता है ।]

प्रजापति—जी हाँ प्रोफेसर साहब, लेकिन यह भी सोचने को बात है कि विज्ञान से लाभ कौन उठा रहा है। क्या आप लोगों ने विज्ञान को साधारण जनता के लिए सुलभ बना दिया है या उसे मुठ्ठी भर लोगों के लिए रुपया कमाने और शेष जनता का शोषण करने का साधन बना दिया है ? यह समाज के साथ बहुत बड़ा छल है विज्ञानप्रकाश जी !

लक्ष्मीपति—जी हाँ, क्यों नहीं ? क्योंकि पूँजीपति जितना माल तैयार करता है; उस सबका इस्तेमाल खुद कर डालता है ! अगर हाथ की बनी

वस्तुओं से मिलों की तैयार वस्तुएँ बहुत सस्ती पड़ती हैं तो यह भी कोई धोखा ही होगा! और अगर जनता को सस्ते मूल्य पर सभी चीजें बहुत अधिक मात्रा में प्राप्त हो जाती हैं, तो वह उसका कल्याण नहीं, उसका शोषण है? और पूँजीपति—वे तो लुटेरे हैं, शोषक हैं—अन्यायी हैं, क्योंकि वे अपना धन और बुद्धि लगाकर जनता की भलाई करते हैं! वाहरे आपका न्याय!

प्रजापति—जी सेठजी, आप लोगों की उदारता के उदाहरण वे किसान हैं जो अपनी जमीन और अपने घरेलू उद्योग धन्धे छोड़ देने के लिए मजबूर किये जा रहे हैं, क्योंकि आप उनको जमीनें छीनकर वहाँ फैक्टरी बनवायेंगे और चूँकि उन सबको काम देने की जिम्मेदारी आपकी या सरकार की तो है नहीं, इसलिये आप मुफ्त में उन्हें अपनी फैक्टरी में तैयार चीनी खिलायेंगे और सीमेण्ट का मकान बनवा देंगे! कितने सौभाग्यशाली हैं वे बेचारे।

भूपति—प्रजापति जी! आप तो चाहते हैं कि किसान हमेशा किसान ही बने रहें! जब सारी दुनियाँ तरक्की कर रही है तो वे क्यों न तरक्की करें? सेठजी कृपा करके उन सब किसानों के खेती-बारी के पुराने बन्धनों को काटकर उन्हें स्वतन्त्र कर देना चाहते हैं ताकि वे इधर-उधर घूमकर दुनिया का अनुभव करें, नये नये पेशे अख्तियार करें। और सेठजी भी क्या उनकी तरक्की के लिए कुछ उठा रखेंगे? नहीं साहब, वे उनमें से बहुतों को, जो हट्टे-कट्टे मजबूत होंगे, काम देंगे। इसके लिये चाहे फैक्टरी के पुराने मजदूरों को निकाल भी देना पड़े तो वे इसकी चिन्ता नहीं करेंगे। कम मजदूरी ही सही, उन्हें रोजी तो मिल जायेगी! और पुराने मजदूर! हा...हा....हा...उन्होंने काफी रुपया कमा लिया होगा। फिर वे काम करते-करते बुड्ढे हो गये। रुपया कमाकर घर भर लिया होगा। अब उन्हें नौकरी की क्या जरूरत होगी? (सीढ़ी पर कुछ लोगों के चढ़ने की खटखट की आवाज, सब उधर ही ताकने लगते हैं। कुछ मजदूर घुस आते हैं।)

लक्ष्मीपति—क्यों, क्यों आ गये तुम लोग यहाँ? मैनेजर साहब?

मैनेजर—(मजदूरों से) क्या बात है जी? चलो, मैं नीचे तुमसे बातें करता हूँ।

एक मजदूर—नहीं, हम सेठजी से अपनी बातें कहना चाहते हैं। सेठजी, हमें धोखा दिया गया है। दस मजदूरों को बिना किसी कारण के निकाल दिया गया है।

लक्ष्मीपति—(परेशान होकर) निकाल दिया गया है? (खड़ा होकर प्यार से) खैर, थोड़ी देर बाद तुम लोग...

दूसरा मजदूर—मगर सेठजी, दरवान हमें भीतर नहीं आने देता। हम बड़ी मुश्किल से आ सके हैं।

मैनेजर—मगर तुम लोग मुझसे...

तीसरा मजदूर—हम सेठजी से बातें करना चाहते हैं, आपसे नहीं? सेठजी, हमसे आपके सामने ही कल तनख्वाह बढ़ाने की बात कहकर किसी कागज पर दस्तखत कराया गया और आज दरवान कहता है कि तुम लोगों ने स्तीफा दे दिया है, काम पर नहीं जा सकते।

कई मजदूर—(एक साथ) हमने स्तीफा नहीं दिया है ..

लक्ष्मीपति—अच्छी बात है (पास जाकर स्नेह से उनका कन्धा थपथपाता हुआ) तुम लोग काम पर जाओ। मैनेजर साहब, इन्हें काम पर जाने दीजिए। और देखो, किसी एक आदमी को अपना प्रतिनिधि बनाकर पूरी बात बताने के लिए थोड़ी देर बाद भेज देना—मैं जांच करूंगा कि क्यों ऐसा हुआ - जाओ! [सब चले जाते हैं।]

प्रजापति—सेठजी, देख लिया आपने अपना न्याय और जनता का कल्याण? अच्छा हम लोग भी अब चलेंगे। आपसे यही बताने आये थे कि किसानों की जमीन लेकर आप फार्म नहीं बनवा सकते।

भूपति—और आपकी फैक्टरी भी नहीं बन सकती सेठजी!

लक्ष्मीपति—मगर फार्म और फैक्टरियां बनकर रहेंगी प्रजापतिजी और कल ही फैक्टरियों की नींव भी पड़ेगी और उन खेतों पर हमारा ट्रैक्टर भी चलेगा। प्रजापतिजी, कल ही आपको वह आश्रम भी छोड़ देना होगा! [उत्तेजित होकर टहलने लगता है] और अगर आप कहने से नहीं

निकलेंगे तो पुलिस आपको वहाँ से निकाल बाहर करेगी।

भूपति [उत्तेजित होकर खड़ा हो जाता है।] आप अँधेरे में हैं सेठजी! जितना आप सोचते हैं, बात उससे आगे बढ़ चुकी है। यह देखिये उस 'स्टे आर्डर' की नकल जो आपके पास आता ही होगा। मैंने ऊसर जमीन आपको पट्टे पर दी है, आश्रम नहीं। अब कचहरी का फैसला हुए बगैर आप फैक्टरी का काम नहीं शुरू कर सकते। और अगर जबर्दस्ती काम शुरू करेंगे तो उसका नतीजा बहुत बुरा होगा सेठजी। जमींदारों का पुराना खून अभी बिलकुल ठंडा नहीं हो गया है।

प्रजापति—विज्ञानप्रकाश जी, आप भी जरा हृदय पर हाथ रखकर सोचिये! [खिड़की से बाहर की ओर इशारा करते हुए] यह ऊसर जमीन किसानों का पुश्तैनी चारागाह है। उस पर किसानों का कब्जा है और रायसाहब को उसे पट्टा करने का कोई अधिकार नहीं है। अगर उन्होंने ऐसा किया है तो गलती की है। सेठ जी! मैं किसानों के प्रतिनिधि के रूप में आपसे प्रार्थना करने आया था कि उसे मत लीजिये। अगर आपने कल वहाँ काम शुरू किया तो हजारों किसान अपने अधिकारों के लिए मर मिटने को तैयार मिलेंगे। आपको जो भी कदम उठाना हो—बहुत सोच समझकर उठाइयेगा।

लक्ष्मीपति—मैंने सब कुछ सोच लिया है। मुझे क्या करना है, इसकी चिन्ता आप मत कीजिये।

प्रजापति—खैर, आप चाहे जो कीजिए, मगर मेरी आपसे एक आखिरी प्रार्थना है। आज रात में आठ बजे से मेरे आश्रम की संगीत-सभा में आप जरूर आइए। यह मेरा और मेरे आश्रम का हार्दिक निमंत्रण है। इसे ठुकरायेगा मत। विज्ञानबाबू, आप भी आइये—मैं आभारी होऊँगा। चलिए रायसाहब! [दोनों उठकर चले जाते हैं! लक्ष्मीपति चिन्तित दिखाई देता है छत की ओर देखता हुआ कुछ सोचता है। एकाएक खड़ा होकर।] मैनेजर साहब, ड्राइवर को बुलाइये.... (फोन उठाने के

लिये आगे बढ़ता है।)

विज्ञानप्रकाश—(खड़ा होता हुआ) अच्छा सेठजी, अब तो मैं चलूँ फिर जब मेरी जरूरत होगी...

लक्ष्मीपति—[कृतज्ञता पूर्वक] अच्छा प्रोफेसर साहब, आप ने तो बहुत कष्ट किया मेरे लिए। जरा उलझन में फँसा दिया इन लोगों ने। लेकिन कोई बात नहीं ! आप की बनाई योजना के मुताबिक कल से काम शुरू हो जायेगा। हाँ मैं एक बात और चाहता हूँ, कल नयी फैक्टरी के शिलान्यास के अवसर पर आपका भी भाषण होना चाहिये....

विज्ञानप्रकाश—देखिये सेठजी, मुझको अधिक नीचे न उतारिये ?

लक्ष्मीपति—आँ...[आश्चर्य से उनकी ओर देखता है ! फिर जोर से हँसकर...] समझ गया, समझ गया। मालूम होता है ज्ञानचन्द्र और प्रजापति का प्रभाव पड़ गया आप पर, क्यों ?

विज्ञानप्रकाश—ज्ञानचन्द्र और प्रजापति का नहीं सेठजी, ज्ञान और प्रजा का। न्याय और जनता के विरुद्ध जाने के लिये मेरी आत्मा गवाही नहीं दे रही है सेठजी। मैं जाता हूँ। [नमस्कार करके चल देता है।]

लक्ष्मीपति—लेकिन प्रोफेसर साहब, मेरी एक बात याद रखियेगा। न्याय का आधार रुपया है और जनता शब्द एक बड़ा भारी फरेब है, झूठ है। जाइये मगर, मैं कल आप को छोड़ नहीं सकता ! नमस्कार [विज्ञान-प्रकाश बाहर निकल जाता है। फोन की घण्टी बजती है लक्ष्मीपति रिसीवर उठाता है] जी मैं बोल रहा हूँ, लक्ष्मीपति ! आप ? अरे राजेन्द जी हैं। अभी आप के यहाँ अपने सेकेटरी को भेज रहा था, आपको बुलाने के लिये। तो आप कहाँ से बोल रहे हैं ? मेरी कोठी से ? अच्छा आप तुरंत चले आइये। यहाँ आप की सख्त जरूरत है—जरा मुनीमजी का फोन दे दीजियेगा...हलो भीखारामजी, तुरन्त एक टैक्सी बुलवाकर राजेन्द्रजी को यहाँ भेजिये ! देर न हो। अच्छा हाँ, आप भी उनके साथ ही आजाइये और कुछ

रुपये भी लेते आइयेगा। यही दस हजार के करीब। बस, नमस्कार। (फोन रखता है ड्राइवर का प्रवेश।)

ड्राइबर—हुजूर !

लक्ष्मीपति—सेक्रेटरी साहब को लेकर कचहरी जाओ। सेक्रेटरी साहब, दरख्वास्त टाइप हो गयी।

सेक्रेटरी—जी हाँ, ये लीजिये।

लक्ष्मीपति —....(लेकर पढ़ता और हस्ताक्षर करता है।) अच्छा आप तुरन्त कचहरी जाइये। कलक्टर साहब से मिलकर यह दरख्वास्त पेश कीजियेगा। घर के दरवान को और यहाँ से किसी को गवाही के लिये लेते जाइये !

मैनेजर—सिनहा बाबू को ले लीजिये। मैं उनसे कहे देता हूँ।

लक्ष्मीपति—ठीक है। अपने वकील चड्ढा साहब को सब बातें समझा दीजियेगा। दूसरी बात .... अच्छा मैनेजर साहब, आप भी कचहरी चले जाइये। अभी...(घड़ी की ओर देखकर) बारह बजे हैं। अच्छा अभी रुक जाइये आप, मुनीमजी को भी आ जाने दीजिए। आप जाइये सेक्रेटरी साहब ! (सेक्रेटरी साहब और ड्राइवर जाते हैं)

मैनेजर—उन मजदूरों का क्या होगा सेठजी !

लक्ष्मीपति —काम करने दीजिये उन्हें। (कुछ सोचकर) अच्छा बुलाइये उन्हें (घण्टी बजाता है ! चपरासी का प्रवेश) जाओ दरवान से कहो उन दसों मजदूरों को बुला लावे।

मैनेजर— लेकिन एक बार कदम आगे बढ़ाकर पीछे हटाना क्या ठीक होगा सेठ जी ?

लक्ष्मीपति—यही तो नीति है मैनेजर साहब, सख्ती, फिर नरमी। कुछ भी कीजिये लेकिन फायदा हर हालत में अपना ही होना चाहिये। (हँसता है।)

मैनेजर— लेकिन ...

लक्ष्मीपति—लेकिन-वेकिन कुछ नहीं। जैसा मैं कहूँ, बस आप चुपचाप करते जाइए। अच्छा हाँ, प्रजापति जी के यहाँ गये थे तो क्या बातें हुईं ?

मैनेजर—जी, कई गाँवों के किसान वहाँ जुटे हुए थे। क्या बातें हो रही थीं, यह तो नहीं पता चला, पर ऐसा लगा कि प्रजापति ने किसानों का संगठन कर लिया है और किसानों को उकसाने में प्रजापति जी की, राय साहब ने भी काफी सहायता की है।

लक्ष्मीपति—(सोचता हुआ) ठीक है। वह संगठन एक दिन से अधिक नहीं टिकेगा मैनेजर साहब।

मैनेजर—बहुत मुश्किल है उस संगठन को तोड़ना सेठजी!

लक्ष्मीपति—(मुँह बनाता हुआ) बहुत आसान है। बात की बात में टूटेगा वह संगठन। इन गाँवों में आपके दलाल तो हैं न ?

मैनेजर—जी हाँ, अपने मन्दिर के पुजारी विश्वनाथ पण्डित, चौधरी गंगाप्रसाद, और भी कई हैं।

लक्ष्मीपति—तो उनसे मदद लीजिये, आज ही। और गाँवों के जितने सरदार और मुकदमेबाज हैं सबको पाँच-पाँच सौ रुपये घूस दीजिये। वे यह आतंक फैला दें कि सरकार कल यहाँ पलटन और पुलिस की पूरी ताकत लगाने जा रही है। जो कोई भी फैक्टरी के काम में अड़ङ्गा डालेगा उसे गोली मार दी जायेगी। पुजारी जी तो यहीं होंगे न ?

मैनेजर—जी हाँ, बुलवाता हूँ। (घण्टी बजाता हुआ) बरसाती! (चपरासी आकर खड़ा होता है) दरवान से कह दिया ?

चपरासी—जी हाँ, वह बुलाने गया है।

मैनेजर—अच्छा, अपने मन्दिर के पुजारी विश्वनाथ पण्डित को तो बुला लाओ जरा।

चपरासी—बहुत अच्छा सरकार! (चला जाता है)

लक्ष्मीपति—और मजदूरों के सम्बन्ध में वहाँ कुछ नहीं हो रहा था मैनेजर साहब ?

मैनेजर—जी हाँ, बसावन को तो आप जानते हैं न ! कल वह मजदूर सभा का प्रेसीडेण्ट चुना गया है । वह भी कुछ मजदूरों को लेकर वहाँ डटा था । (कुछ पास जाकर धीरे से) मजदूर सभा में भी मेरे आदमी हैं सेठ जी !

लक्ष्मीपति—ठीक है, मैं तो यह जानता ही था और इसीलिए····

[सीढ़ी पर कुछ लोगों के चढ़ने की आवाज सुनकर सेठ चुप हो जाता है । दोनों दरवाजे की ओर देखने लगते हैं । दस मजदूरों का प्रवेश ।]

लक्ष्मीपति—(मजदूरों से) आओ, पास आ जाओ । देखो भाई, मालिक और मजदूर का सम्बन्ध बहुत घनिष्ट होता है । जब तक फैक्टरी है तब तक मालिक और मजदूर दोनों हैं । फैक्टरी की तरक्की होगी तो हमारी तुम्हारी दोनों की तरक्की होगी । मेहनत से काम करो और फिर देखो, जो तुम माँगते हो मैं देता हूँ या नहीं । और देखो, इन लीडरों के चक्कर में न पड़ो । वे तुम्हें आगे कर अपना मतलब गाँठना चाहते हैं ; आखिर तुम तो यही चाहते हो कि तुम्हारी तनख्वाह बढ़ाई जाय ? [खड़ा होकर] मैनेजर साहब !

मैनेजर—जी !

लक्ष्मीपति—देखिये, अगले महीने से इनकी तनख्वाह बढ़ा दीजिये और यह एलान करा दीजिए कि सबका मँहगाई भत्ता दो रुपया और बढ़ा दिया जायेगा । (मजदूरों की ओर मुखातिब होकर) और देखो, कम्युनिस्टों और सोशलिस्टों का मैं कट्टर दुश्मन हूँ । मैं तो कांग्रेसी हूँ और चाहता हूँ कि हर मजदूर कांग्रेस का समर्थक बने । इसलिये लाल झण्डेवाली यूनियन में जो शामिल होगा उसका मुझसे बड़ा दुश्मन कोई नहीं होगा । अगर....(सीढ़ियों पर किसी के चढ़ने की आवाज) देखिये मैनेजर साहब, कौन है ? (मैनेजर आगे बढ़कर दरवाजे से देखता है ।)

मैनेजर—[सेठ की ओर देखकर] मुनीम जी और उनके साथ कोई और शायद वही राजेन्द्र जी हैं [दरवाजे से दोनों का प्रवेश]

लक्ष्मीपति—[खड़ा होकर स्वागत करता हुआ] आइये राजेन्द्र जी,

कब से आपकी प्रतीक्षा कर रहा हूँ। देखिये, ये हमारी फैक्टरी के मजदूर हैं, कुछ गुमराह हो गये थे बेचारे !

राजेन्द्र—[मजदूरों की ओर देखता हुआ] क्यों बात क्या है ?

लक्ष्मीपति—अजी बात क्या है ! ये लोग लाल झंडेवाले मजदूर युनियन के कार्यकर्त्ता हैं। वही मैं इनसे कह रहा था कि हम तो गांधीवादी हैं, इसलिये मैं चाहता हूँ कि यहाँ गांधी जी के उसूलों पर चलने वाली मजदूर सभा काम करे। राजेन्द्रजी, आप हमारे मजदूरों का नेतृत्व कीजिए [मजदूरों से] देखो, ये देश के बहुत बड़े त्यागी नेता और 'देशसेवक' अखबार के सम्पादक हैं !

राजेन्द्र—अजी सेठजी, मैं क्या हूँ ? मैं तो एक अदना-सा सेवक ठहरा। हाँ, अगर मजदूरों का काम मेरे बिना न चलता हो तब तो विवश होकर मुझे यह काम करना ही पड़ेगा। इतना मैं विश्वास दिलाता हूँ कि यथाशक्ति मैं मजदूरों का कोई अहित नहीं होने दूँगा और अहिंसात्मक ढंग से उनकी सभी माँगें पूरी कराने का प्रयत्न करता रहूँगा। बोलिए, आप लोगों की क्या राय है ?

एक मजदूर—जी, आज शाम को मजदूरों की एक सभा करके यह बात तै कर ली जाय तो ज्यादे अच्छा हो।

लक्ष्मीपति—हूँ, इसमें सभा करने की क्या जरूरत है ? हमारे मिल के जितने मजदूर हैं सभी उसके सदस्य हो जायँगे।

राजेन्द्र—फिर भी सेठजी, पदाधिकारियों का चुनाव वगैरह आज शाम को हो जाना चाहिये।

लक्ष्मीपति—अच्छी बात है। मैनेजर साहब ! सभी मजदूरों को यह सूचना दे दीजिये कि आज शाम को सर्वोदय मजदूर यूनियन की सभा होगी, जिसमें प्रसिद्ध गांधीवादी नेता राजेन्द्र जी का भाषण होगा। [मजदूरों से] अच्छा, जाओ तुम लोग, और हाँ घूरे, तुम्हें उस यूनियन का सेक्रेटरी बनाया जायगा। क्यों राजेन्द्र जी ! यह बहुत दिनों से मजदूरों में काम करता आ

रहा है।

राजेन्द्र—तब इससे अच्छा क्या होगा सेठजी। (सभी मजदूर चले जाते हैं।

लक्ष्मीपति—देखिये राजेन्द्रजी, मेरे जीवन की सबसे बड़ी परीक्षा होने जा रही है, इसमें मैं आपकी सहायता चाहता हूँ।

राजेन्द्र—कहिये, मैं आपके लिए क्या कर सकता हूँ सेठजी!

लक्ष्मीपति—आप ही वह काम कर सकते हैं राजेन्द्रजी, जिस पर मेरी सफलता निर्भर करती है। कल मेरी फैक्टरियों का शिलान्यास होने वाला है और नये फार्म का भी काम शुरू होनेवाला है, लेकिन रायसाहब भूपतिसिंह और प्रजापति इस समय मेरे सबसे बड़े दुश्मन बन गये हैं। वे नहीं चाहते कि मेरी फैक्टरियाँ खुलें, इसलिए वे किसानों को सत्याग्रह करने के लिए भड़का रहे हैं और मजदूरों से हड़ताल करने के लिए कह रहे हैं।

राजेन्द्र—अच्छा! आखिर क्यों?

लक्ष्मीपति—क्यों? दुष्टों की दुष्टता का भी कोई कारण होता है राजेन्द्रजी? जमीदारी टूट गई है न, इसलिए रायसाहब अब लीडर बनना चाहते हैं और प्रजापति तो नाच-गाने वाला आदमी ठहरा, रायसाहब के बहकाये में आ गया है। इन लोगों ने मेरे पागल भाई को भी उलटा-सीधा पढ़ाकर अपने यहाँ बुला लिया है।

राजेन्द्र—तो फिर इसके लिए आपने क्या सोचा है?

लक्ष्मीपति—[खड़ा होकर टहलता हुआ] उपाय तो बहुत आसान है राजेन्द्रजी, लेकिन यदि आप चाहें तो?

राजेन्द्र—मैं चाहूँ?

लक्ष्मीपति—जी हाँ, आप! उद्योग मन्त्री आपके मित्र हैं, आपने विकास समिति में माननीय मंत्री द्वारा जो काम कराया है उसे मैं कभी भूल नहीं सकूँगा। लेकिन यह दूसरा काम भी अब आप ही को करना होगा।

राजेन्द्र—जरूर करूँगा, लेकिन काम क्या है ?

लक्ष्मीपति—मैं चाहता हूँ कि कल उद्योग मन्त्री हमारी नई फैक्टरियों का शिलान्यास करें।

राजेन्द्र—[आश्चर्य से] लेकिन यह कैसे हो सकता है सेठजी ! कल शिलान्यास करना है और आज आप कह रहे हैं। हो सकता है उनका पहले से कोई कार्यक्रम बना हो।

लक्ष्मीपति—चाहे जो भी हो, चाहे इसके लिए उनको कोई और कार्यक्रम छोड़ भी देना पड़े, किन्तु आप उन्हें अवश्य लाइये। (निकट जाकर धीरे से) राजेन्द्र जी ! चाहे जितना रुपया खर्च हो, मैं तैयार हूँ। बोलिये, इस समय कितना दे दूँ ?

राजेन्द्र—[कुछ सोचता हुआ] अब यह तो मैं बाद में बताऊँगा। जरा पूछ—

लक्ष्मीपति—फिर भी खर्च-बर्च के लिए ? मुनीमजी रुपये लाये हैं ?

मुनीम—जी हाँ। (धोती के भीतर से नोटों की गड्डी निकालते हैं।)

लक्ष्मीपति—राजेन्द्र जी, टैक्सी तो नीचे है न ? आप अभी मन्त्री जी के यहाँ जाइये। अभी शायद बँगले पर ही मिल जाएँगे और आज के खर्च-बर्च के लिए एक हजार लीजिए। (धीरे से) और देखिए, रुपये की चिन्ता न कीजियेगा। मेरा सब कुछ आपही का है। शान का सवाल है राजेन्द्रजी !

राजेन्द्र—(रुपया लेता हुआ) अच्छी बात है मैं जा रहा हूँ, कोशिश करूँगा। [उठकर नमस्कार करता और चला जाता है।)

लक्ष्मीपति—मैनेजर साहब, पुजारी जी नहीं आये तब ? खैर आज शाम को उनके साथ गाँव में चले जाइएगा और किसानों को समझाइएगा कि जितने बालिग मर्द और औरतें नयी फैक्टरियों में काम करना चाहें, सबको काम दिया जायेगा। विश्वास पैदा करने के लिए उनका नाम-धाम भी लिख लीजियेगा। समझ गये न ? और हाँ, अभी थोड़ी देर में हमारे साथ

कचहरी चलिये। राय साहब ने स्टे आर्डर कराया है न। ह....ह...उसके बारे में भी जरा पुलिस कप्तान से मिल लिया जायेगा क्यों? (सीढ़ी पर किसी के चढ़ने की आवाज।) देखिये, पण्डितजी ही आ रहे हैं शायद। आइये, आइए पण्डितजी। [दरवाजे से बसावन का प्रवेश] अरे तुम?

मैनेजर—कहिये क्या हुक्म है? सेठजी, यही हैं कामरेड बसावन।

लक्ष्मीपति—ज्ञानचन्द्र का संदेश लेकर आए हो शायद?

बसावन—जी नहीं, मजदूर सभा का संदेश लेकर।

लक्ष्मीपति—कैसी मजदूर-सभा? किसकी मजदूर-सभा?

बसावन—जो मजदूरों की मजदूर सभा होती है।

लक्ष्मीपति—कभी-कभी नाचने-गाने वालों और पागलों की भी मजदूर सभा होती है। खैर, सन्देश क्या है भला?

बसावन—[एक कागज आगे बढ़ाता हुआ] मजदूरों की ये माँगें हैं और पूरी न होने पर पन्द्रह दिन बाद हड़ताल का नोटिस।

लक्ष्मीपति—[कागज लेकर नीचे वाला भाग पढ़ता है।] ज्ञानचन्द्र प्रधान मन्त्री—बसावन—प्रेसीडेण्ट—रानीघाट पेपर मिल्स मजदूर सभा हा...हा....हा...तो यह तो पागलों और नाचने-गाने वालों की मजदूर सभा है? क्यों?

बसावन—सेठजी, हमारी माँगों को हँसकर टालने की कोशिश न कीजिए, नहीं तो हमें हड़ताल के लिए...

लक्ष्मीपति—(गरजता हुआ) चुप रहो? हड़ताल तुम्हारे पुरखे भी नहीं करा सकते यहाँ। और यह नोटिस? मेरे पास पागलों की बातें पढ़ने के लिये फुरसत नहीं है। (फाड़कर टुकड़े-टुकड़े करके फेंक देता है।)

बसावन—तो हड़ताल होकर रहेगी सेठजी। [जाना चाहता है।]

लक्ष्मीपति—रुको! तुम अभी नहीं जा सकते। (बसावन रुककर पीछे देखता है। लक्ष्मीपति भी खड़ा होता है।) यहाँ मेरे पास आओ।

बसावन—यों लाल-पीले क्यों हो रहे हैं ? कहिए न जो कहना हो।

लक्ष्मीपति—मैनेजर साहब, दरवाजा बन्द कीजिए, (मैनेजर दरवाजा बन्द कर देता है।) सिटकनी भी बन्द कर दीजिए। हां देखो बसावन, तुम दो में से एक ही कर सकते हो—मिल की नौकरी या ज्ञानचन्द्र की यूनियन का सभापतित्व। बोलो, कौन-सा काम करना चाहते हो ?

बसावन—मगर मैं दोनों ही काम करना चाहता हूँ सेठजी !

लक्ष्मीपति—इसका मतलब कि तुम नौकरी नहीं करना चाहते। तो आओ, स्तीफा लिखो।

बसावन—मगर मैं स्तीफा नहीं दूँगा सेठजी ! और आप मुझे निकाल भी नहीं सकते।

लक्ष्मीपति—कानून के भरोसे कूद रहे हो ? हा....हा.. हा में तुम्हें निकाल भी सकता हूँ बसावन, और मेरा कुछ नहीं होगा। मगर इतनी झंझट करने नहीं जाऊँगा....अच्छा एक रास्ता और है। सर्वोदय मजदूर सभा में काम करोगे ? मैं तुम्हारी तरक्की भी कर दूँगा। बोलो ?

बसावन—जी नहीं, लालच किसी और को दीजियेगा सेठजी !

लक्ष्मीपति—अच्छी बात है। तो लिखिये मैनेजर साहब, स्तीफा तो लिखिये इनका। [मैनेजर एक सादे कागज पर लिखने लगता है।] बसावन, खूब अच्छी तरह सोच-समझ लो ? तुम्हारे भी बीबी-बच्चे होंगे। खुद भी मारे-मारे फिरना और उन्हें भी सड़क का भिखारी बनाना हो तो स्तीफा दे दो, नहीं तो जो मैं कहता हूँ, वह करो और चैन से जिन्दगी के दिन गुजारो।

बसावन [जोर देकर] मगर मैं दोनों में से एक भी नहीं करूँगा सेठजी !

लक्ष्मीपति—अच्छा ? यह बात है ? (मैनेजर कागज सेठ के आगे बढ़ाता है।)

मैनेजर—अपने हित की बात सोचो बसावन। पागलपन न करो !

बसावन—इसमें सोचने की क्या बात है मैनेजर साहब ! आप मुझे जबर्दस्ती नहीं निकाल सकते ।

लक्ष्मीपति—लेकिन जबर्दस्ती स्तीफा लिखवा सकते हैं । [क्रोध से काँपता हुआ मेज की दराज से पिस्तौल निकालकर बसावन के सामने चला जाता है ।] बोलो, लिखते हो ?

बसावन —नहीं लिखूँगा ।

लक्ष्मीपति—(सामने आकर सिर पर निशाना लगाता हुआ) तो मैं फायर कर दूँगा । एक—दो...

मैनेजर—मैं दस्तखत कराये देता हूँ सेठजी । बसावन, यह लो कलम, दस्तखत करो, जल्दी करो ? सेठजी, भगवान के लिए दया कीजिए बेचारे पर । कितने खून आप कर चुके हैं—अब यह नया पाप सर पर न लीजिये सेठजी.... [बसावन आँखें बन्द कर लेता है जैसे उसे चक्कर आ रहा हो—मैनेजर उसे एक हाथ से रोकता और दूसरे हाथ से कागज आगे बढ़ाकर बसावन का कलम वाला हाथ कागज पर कर देता है । बसावन दस्तखत कर देता है । दस्तखत होते ही सेठ और मैनेजर बड़े जोर से ठहाका मारकर हँसने लगते हैं । बसावन विक्षिप्त-सा आँखें खोलता और हाथ से जैसे अँधेरे में कुछ टटोलता-सा दरवाजे की ओर बढ़ता है । मैनेजर और सेठ फिर जोर से हँसते हैं ।]

[परदा गिरता है ।]

तृतीय अंक

[प्रजापति के आश्रम के फाटक के बाहर का मैदान। दर्शकों के सामने फाटक और चाहरदीवारी का दृश्य। एक पार्श्व की ओर वह जमीन है जिस पर सेठ लक्ष्मीपति की नयी मिलें बनने वाली हैं। दूसरे पार्श्व की ओर नदी है। पर ये दोनों दृश्य ओट में होने से मात्र सूच्य हैं। कविता अकेली चिन्तित मुद्रा में टहल रही है। बाल बिखरे हुए, अस्त-व्यस्त कपड़े, जिससे ज्ञात होता है कि रात भर की जगी है। शायद किसी की प्रतीक्षा कर रही है। बसावन का प्रवेश। उसके हाथ में अखबार है।]

कविता—बसावन भाई, विज्ञानप्रकाश जी को देखा है ? वे बाबा के लिए दवा लाने गये थे।

बसावन—नहीं, वे तो नहीं मिले। आचार्य जी अब कैसे हैं दीदी ?

कविता—विज्ञान बाबू सवेरे डाक्टर को लेकर आये थे। (चुप हो जाती है।)

बसावन (घबरा कर) चुप क्यों हो गयीं ? बोलिये न ! डाक्टर ने क्या कहा ?

कविता—डाक्टर ने कहा कि हालत चिन्ताजनक है। दिमाग पर चोट लगी है। (अत्यधिक चिन्तित हो जाती है।)

बसावन—घबराओ मत दीदी। भगवान हमारी मदद करेगा।

कविता—कौन जाने बसावन ! सेठ अपने रुपयों के बल पर सबको वश में करता जा रहा है। अगर कहीं उसने भगवान को भी अपने रुपयों से खरीद लिया तो क्या होगा ?

बसावन—दीदी, अगर भगवान भी सेठ की ओर हो गया तो हम भगवान से भी लड़ेंगे। लेकिन आचार्य जी को—

कविता—तुमने सुना है बसावन ? आज सेठ की नयी फैक्टरी का शिलान्यास होने वाला है--ठीक हमारे आश्रम के सामने—वहाँ, सामने के मैदान में...(पार्श्व की ओर संकेत करती है।)

बसावन—सुना है; अभी थोड़ी देर बाद शिलान्यास होगा। शिलान्यास करने आ रहे हैं राज्य के उद्योग मन्त्री। देखिये, अखबार में भी छपा है।

कविता—(हाथ में अखबार लेकर पढ़ती है) अरे, इतना सफेद झूठ।

बसावन—पढ़ा है दीदी, और यही दिखाने के लिए इसे लाया भी हूँ।

कविता—(समाचार जोर से पढ़ती है) एक पागल का उत्पात। पागल गिरफ्तार। कल स्थानीय कला-निकेतन के एक विशेष सांस्कृतिक आयोजन में उस समय भयंकर गड़बड़ी मच गयी जब दर्शकों की भीड़ में एक पागल घुस गया। कला निकेतन के आचार्य उस समय धन्यवाद भाषण कर रहे थे। पागल ने उनके ऊपर एक ईंट का बड़ा टुकड़ा फेंका जो उनके सिरे पर लगा। प्रजापति जी मंच पर घायल होकर गिर पड़े। लोगों ने पागल को पकड़ लिया। बाद में सूचना पाकर पुलिस वहाँ पहुँची और पागल को गिरफ्तार कर ले गई। (अखबार को फाड़कर फेंक देती है) झूठ की हद हो गई बसावन। यह जनता की आँखों में धूल झोंकना नहीं तो और क्या है?

बसावन—लेकिन यह झूठ कब तक चलेगा दीदी। हजारों आदमी गवाह हैं कि कल रात में सेठ लक्ष्मीपति और उनके मैनेजर अपने साथ पुलिस लेकर आये और वारन्ट दिखाकर ज्ञानचन्द्र जी को पकड़वा ले गये। सेठ के गुण्डों ने ढेलेबाजी की जिससे आचार्य जी का सिर फूट गया।

कविता—सफेद को काला इसी तरह बनाया जाता है। वाह रे दुनिया!

बसावन—दीदी, यह सब रुपये का खेल है। सेठ ने इस अखबार को खरीद लिया है। राजेन्द्र जी सेठ के नौकर हो गये हैं। इसीलिए तो वह उन्हें कठपुतली की तरह नचा रहा है! कल शाम की खबर तुमने नहीं सुनी?

कविता—कौन सी खबर ?

बसावन—सेठ ने मजदूरों की एक अलग यूनियन बनायी है और उसका नाम रखा गया है 'रानीघाट सर्वोदय मजदूर सभा'। इस 'देश सेवक' अखबार के सम्पादक राजेन्द्र जी उस यूनियन के अध्यक्ष चुने गये है। सेठ लक्ष्मीपति, मैनेजर, मिल के अधिकारी सभी उस सभा में थे।

कविता—और मजदूर ? मजदूर थे या नहीं ?

बसावन--मजदूर भी थे दीदी, पर वे तमाशा देखने गये थे। लेकिन दीदी, सेठ लक्ष्मीचन्द बहुत चालाक है। जानती हो, उसने अपने भाषण में क्या कहा ?

कविता—यही कहा होगा कि हड़ताल नहीं करनी चाहिये।

बसावन— नहीं, उसने कहा—'मजदूर भाइयो, यह फैक्टरी आपकी है। हम तो बस उसका इन्तजाम करते हैं आप सब लोग 'सर्वोद्रय मजदूर सभा' के सदस्य बन जाइये।

कविता—और किनके भाषण हुए ?

बसावन—राजेन्द्र जी, मैनेजर और क्लर्क सिनहा बाबू के भाषण हुए। राजेन्द्र जी ने मजदूरों से महात्मा गान्धी के बताये अहिंसा के मार्ग पर चलने का उपदेश दिया। सिनहा बाबू ने हमारी मजदूर सभा को खूब गालियाँ सुनाईं और मैनेजर ने सेठजी की ओर से यह घोषणा की कि मजदूरों को दो मास का वेतन बोनस के रूप में मिलेगा और जो किसान रानीघाट की जमीन से बेदखल किये गये हैं उन्हें, नयी फैक्टरी में काम दिया जायेगा।

कविता—इसका मतलब यह हुआ कि सेठ ने किसानों और मजदूरों को भी खरीद लिया।

बसावन—मजदूरों को नही दीदी, सिर्फ किसानों को। मजदूरो में उसने फूट डालने की कोशिश जरूर की है लेकिन मजदूर किसानों की तरह स्वार्थी

नहीं होता। वह अपना निजी लाभ नहीं देखता, पूरे मजदूर वर्ग का लाभ देखता है।

कविता—तो क्या तुम्हें पूरा विश्वास है कि सभी मजदूर तुम्हारे साथ हैं ?

बसावन—कुछ को छोड़कर बाकी सभी मजदूर हमारे साथ हैं। कल रात में यहाँ की घटना के बाद मजदूर—बस्ती में हमारी सभा हुई थी। हम आचार्य जी का साथ कभी नहीं छोड़ेंगे ·· कभी नहीं !

[फाटक के भीतर से कला, दीदी-दीदी की आवाज लगाती है]

कविता—मैं यहाँ हूँ कला, बाहर। (कला बाहर आती है)

बसावन—दीदी, मुझे बहुत जरूरी काम से कुछ साथियों से अभी मिलना है। मैं थोड़ी देर में वापस आता हूँ।

कविता—जाओ। लेकिन जल्दी ही आना बसावन भाई ! (बसावन बाहर चला जाता है।)

कला—दीदी, बाबा नींद में बार-बार बसावन और ज्ञान बाबू का नाम ले रहे हैं।

कविता—बाबा अभी पूरी तरह होश में नहीं आये है कला। उनका मन बसावन और ज्ञानबाबू में ही लगा हुआ है, इसी से...

कला—ज्ञान बाबू का कुछ पता लगा दीदी ?

कविता—हाँ, सबेरे विज्ञानप्रकाश बता रहे थे कि उन्हें रात में ही पागलखाने में भेज दिया गया था। लेकिन विज्ञानप्रकाश जी ने सबेरे फोन कर गृहमंत्री से बातें की थी। उन्हें उम्मीद है कि वे ज्ञानबाबू को रिहा करा लेंगे।

कला—दीदी ! ज्ञानबाबू इतने उत्तेजित क्यों हो जाते हैं ? कभी-कभी तो वे सचमुच ही पागल जैसा आचरण करने लगते हैं। मैंने कल बाबा से पूछा था 'बाबा क्या आपने ज्ञानबाबू को समझा है ?' और जानती हो बाबा ने क्या उत्तर दिया ?

कविता—क्या कहा उन्होंने !

कला—उन्होंने कहा कि इस व्यक्ति के हृदय में एक ज्वालामुखी सुलग रहा है; पर उसे फूट निकलने का रास्ता नहीं मिल रहा है। लेकिन....लेकिन वह कैसा ज्वालामुखी है दीदी जो स्वयं उन्हीं को जलाता रहता है ?

कविता—मैंने कल कार्यक्रम के पहले उनका हृदय टटोलने की कोशिश की थी कला ! उनके मन को इतना अधिक दबाया गया है कि वे अपने अस्तित्व को ही भूल बैठे हैं। पर उनकी विद्रोही प्रतिभा रह-रह कर शोले की तरह भड़क उठती है। कुछ ऐसे क्षणों में ही वे पागल जैसे कार्य करने लगते हैं। पर वे पागल नहीं हैं।

कला—क्या उन्हें ठीक नहीं किया जा सकता दीदी ?

कविता—बहुत कठिन है कला, लेकिन स्नेह, समर्पण, प्यार और आत्मीयता से उन्हें स्वाभाविक रास्ते पर लाया जा सकता है। यह तभी सम्भव है जब कि उनके मन की भीतरी गाँठें खुल जायँ, वे अपने को व्यक्त करके हलके हो जायँ।

कला—तो फिर हमें यह करना ही होगा। चाहे जैसे हो...

कविता—कला, मैंने कल उनके मन की गाँठ खोल दी। उनका रहस्य जान लिया और मेरा विश्वास है कि अब वे बिलकुल स्वस्थ हो जायेंगे।

कला—कौन सा रहस्य ? मुझे भी बताओ दीदी !

कविता—कला, ज्ञानबाबू को बचपन से ही असहनीय यातना दी गयी है। उन्हीं को नहीं, उनकी माँ को भी।

कला—उनकी माँ को ? क्या उनके बाप ने यह सब किया ?

कविता—नहीं, बाप ने नहीं, लक्ष्मीपति ने। यह लक्ष्मीपति ज्ञानबाबू का सगा भाई नहीं, उनके पिता सेठ मंगलदास का दत्तक पुत्र है। ज्ञानबाबू की माँ सेठ मंगलदास की दूसरी पत्नी थीं। जब बहुत दिनों तक उनको कोई

सन्तान नहीं हुई थी उन्हीं के कहने से सेठ मंगलदास ने अपने एक दूर के रिश्तेदार के लड़के को गोद ले लिया था। वही लड़का आज सेठ लक्ष्मीपति बन बैठा है।

कला—और ज्ञानबाबू ?

कविता—लक्ष्मीपति के बड़े हो जाने पर बुढ़ापे में ज्ञानबाबू का जन्म हुआ। लक्ष्मीपति को आशा नहीं थी कि मंगलदास को उस उम्र में कोई संतान होगी। ज्ञानबाबू के पैदा होने पर उसे डर हुआ कि उसका अधिकार छीन जायेगा। इसीलिए उसने मंगलदास को जहर देकर मार डाला। उसके बाद ज्ञानबाबू और उनकी माँ को तरह-तरह के कष्ट दिये जाने लगे। ज्ञानबाबू को अवैध संतान बताया गया; उन्हें नौकर तक पीटते थे, पढ़ने नहीं दिया जाता था, उनको घर से निकाला नहीं गया, बाकी सब कुछ किया गया। इतना होते हुए भी ज्ञानबाबू की प्रतिभा नहीं मरी। किसी तरह उन्होंने छात्रवृत्ति के सहारे प्रथम श्रेणी में दर्शन शास्त्र में एम० ए० कर लिया। किन्तु घर में अब भी वे पागल ही कहे जाते रहे।

कला—रहने दो दीदी, अब अधिक नहीं सुन सकती !

कविता—अब तुम्हीं बताओ, ऐसा व्यक्ति क्या सचमुच पागल हो सकता है ?

कला—किन्तु दीदी, सेठ लक्ष्मीपति ने तो उन्हें पागल सिद्ध करके आखिर गिरफ्तार करा ही दिया !

कविता—लेकिन सचाई छिपी नहीं रह सकती। मुझे विश्वास है कि विज्ञानप्रकाश अपने व्यक्तिगत प्रभाव से ज्ञानबाबू को मुक्त करा लेंगे।

कला—विज्ञानबाबू अभी दवा लेकर नहीं आये दीदी ?

कविता—मैं बाबा के पास चलती हूँ, तुम थोड़ा आराम कर लो। (जाने लगती है।)

कला—मैं भी चलूँगी दीदी, मुझे आराम नहीं करना है ! (कविता के

पीछे-पीछे चली जाती है। मंच खाली हो जाता है। थोड़ी देर में एक पार्श्व से बसावन, रज्जाक, भोला आदि का प्रवेश)

बसावन—लेकिन रज्जाक भाई, आचार्य जी इसके लिए राजी न होंगे। उनसे इसके बारे में कुछ भी कहना बेकार है।

रज्जाक—बसावन, हम जो कुछ करेंगे उसकी सारी जिम्मेदारी आचार्य जी पर ही जायेगी। इसलिए उनकी राय के खिलाफ..........

बसावन—रज्जाक, पिस्तौल दिखाकर मुझसे स्तीफा लिखाया गया है, ज्ञानबाबू को पागलखाने में बन्द किया गया है और आचार्य जी को पत्थर मारा गया है। इसका बदला लेना ही होगा। मैं जानता हूँ, आचार्य जी इसके लिए तैयार नहीं होंगे। वे अहिंसावादी हैं और हृदय परिवर्तन में विश्वास करते हैं।

भोला—फिर भी उन्हें खबर तो कर ही देनी चाहिए कि हम लोग क्या करने जा रहे हैं।

बसावन—और अगर उन्होंने हमलोगों को ऐसा करने से मना कर दिया तो ?

रज्जाक—हाँ, यह तो सोचने की बात है। क्या सिर्फ मंत्री को काला झण्डा दिखा देने या जुलूस निकाल देने से ही हमारा बदला पूरा हो जायेगा ?

भोला—तो फिर हम लोग यहाँ आये ही क्यों ?

बसावन - आये हैं तो क्या बुरा हुआ ? एक बार आचार्य जी के दर्शन तो कर लें ? कौन जाने फिर......

भोला—ऐसी बात मुँह से न निकालो बसावन ! हमने जो तै किया है उसे पूरा करके रहेंगे।

बसावन—तो फिर हम तीनों यहाँ भगवान का नाम लेकर यह कसम लें...(सहसा फाटक के भीतर से कविता का प्रवेश। वह चुपचाप इनकी बातें सुनती है।)

भोला और रज्जाक—हम कसम लेते हैं कि आज हम सेठ लक्ष्मीपति का खून... ...

कविता—(बीच ही में कड़कती आवाज में बोल उठती है) बसावन! यह सब क्या हो रहा है?

(तीनों चौंककर सकपका जाते हैं।)

बसावन—(सँभलता हुआ) कुछ नहीं दीदी, हम लोग जरा........

कविता—हमने सब सुन लिया है बसावन! लेकिन सोच लो कि तुम लोग जो करने जा रहे हो उसका नतीजा क्या होगा?

भोला—अब चाहे जो भी नतीजा हो लेकिन हम अपने कौल से पीछे नहीं हटेंगे दीदी!

कविता—मैं फिर कहती हूँ, बदला लेने के उन्माद में तुम लोग गलत कदम उठाने जा रहे हो।

बसावन—गलत हो या सही, मगर दीदी, अब हमारे सामने सिर्फ यही रास्ता रह गया है।

कविता—आखिर करने क्या जा रहे हो तुम लोग?

बसावन—दीदी, आचार्यजी का लाल खून हमारी आँखों में उतर आया है। हम हिंसा और अहिंसा नहीं जानते, हम तो खून बहाने वालों का खून बहायेंगे। आज या तो सेठ लक्ष्मीपति रहेंगे या मैं...मैं जा रहा हूँ... (जाना चाहता है।)

कविता—बसावन, रुको बसावन! उतावले में तुम जरूर भयंकर अपराध करने जा रहे हो।

बसावन—[क्रोध से] अपराध? दीदी, खूनी का खून करना अपराध है? मैं तो आचार्य जी से यही बताने आया था।

कविता—अपराध है बसावन। अगर बाबा अच्छे होते तो कभी तुम्हें

ऐसा अपराध नहीं करने देते। मगर मैं भी उन्हीं की बेटी हूँ। मैं तुम्हें ऐसा नहीं करने दे सकती।

बसावन—दीदी, ज्ञानबाबू ने मुझसे कहा था कि न्याय भीख माँगने से नहीं मिलता, वह तो बाँहों की ताकत से छीना जाता है।

कविता—ज्ञानबाबू की बातें ज्ञानबाबू जानें, लेकिन इतना मेरा कहा जरूर मानो कि कुछ भी करने के पहले विज्ञानप्रकाशजी से जरूर सलाह ले लो।

बसावन—विज्ञानप्रकाश? क्या उन पर विश्वास करती हो दीदी। वे सेठ के आदमी हैं।

कविता—ऐसा मत कहो भाई। कल रात उन्होंने हमारी जो सहायता की है उसे मैं जीवन भर नहीं भूल सकती। बाबा की जिन्दगी अगर बच गयी तो उसका सारा श्रेय उन्हीं को मिलेगा। रातोरात शहर से डाक्टर को लाना, पहुँचाना, फिर सबेरे डाक्टर को लाना, पैसा खर्च करना। कौन दूसरों के लिए इतना करता है बसावन। सेठ का आदमी ऐसा क्यों करेगा?

बसावन—किन्तु अभी कल तक वे सेठ की कदमबोसी करते रहे हैं दीदी! एक दिन में ही वे इतना बदल जायेंगे, मुझे विश्वास नहीं होता।

कविता—मनुष्य का हृदय पत्थर नहीं है बसावन!

बसावन—लेकिन पहले हृदय तो हो उसके पास?

कविता—अगर वह मनुष्य है तो उसके पास हृदय भी अवश्य होगा। हृदय कब बदल जायेगा, इसका कोई ठिकाना नहीं। विज्ञानप्रकाश जी वैज्ञानिक होते हुए भी सहृदय हैं बसावन, इतना मैं तुम्हें विश्वास दिलाती हूँ।

बसावन—हो सकता है दीदी, तुम्हारे कल के 'युग-देवता' नामक नृत्य-नाट्य ने उन पर जादू किया हो!

कविता—कहीं न कहीं से उन पर जादू जैसा प्रभाव तो जरूर पड़ा है। तुम उनसे सलाह लेकर ही कदम उठाओ।

बसावन—लेकिन मैं उन्हें ढूँढ़ूँ कहाँ?

कविता—वे इसी समय आने को कह गये थे। शायद उन्हें जिलाधीश के यहाँ देर लग गयी हो।

बसावन—जिलाधीश के यहाँ ?

कविता—(दूर से देखती हुई) वह देखो तो बसावन, उस झुरमुट के उस ओर दो आदमी दीखते हैं ?

बसावन—हाँ दीखते तो हैं, (कुछ और ध्यान से देखता है मगर पेड़ों की ओट के कारण साफ दिखाई नहीं पड़ रहा है।)

कविता—विज्ञानप्रकाश और ज्ञानबाबू तो नहीं है न ?

(बसावन आश्चर्य और जिज्ञासा की दृष्टि से कविता की ओर देखता है, त्योंही भीतर से कला दौड़ती हुई आती है ! उसके चेहरे पर उदासी मिश्रित प्रसन्नता है।

कला—दीदी.... दीदी ....बाबा जाग गये हैं, तुम्हें पूछ रहे थे....

कविता—तुमने दवा नहीं पिलाई ?

कला—तुम्हीं चलकर पिला दो। (कविता घबराकर भीतर जाती है।) कला—(बसावन की ओर देख कर कहती है।) बसावन भाई, बाबा नींद में बार-बार तुम्हारा नाम ले रहे थे।

बसावन— मेरा नाम ले रहे थे ? (व्याकुल होकर) मेरा नाम....मैं उनसे मिलूँगा .. मिलूँगा लेकिन नहीं। पहले मैं अपना काम करूँगा—खून के बदले खून .. (जाने के लिये घुमता है त्योंही मोलई चौधरी और एक मजदूर का प्रवेश। दोनों ही घबराये से मालूम पड़ते हैं। तब भीतर से आवाज आती है 'कला ओ कला ..'कला भीरत दौड़ जाती है।)

बसावन— आ गये चौधरी जी ? क्या हाल है गाँव वालों का ?

[चौधरी चुप हैं, आँखें नीचे झुक जाती हैं।]

बसावन—(आतुरता से) बोलिये चौधरी जी, चुप क्यों हो गये आप ? बोलते क्यों नहो ? आप के गाँव से कितने आदमो आ रहे हैं हमारे जुलूस में ?

रज्जाक—बसावन भाई गाँव के सभी आदमी सेठ से मिल गये हैं। जिन लोगों की जमीन सेठ ने बेदखल कराई है उन्हें काफी रुपये देकर उसने अपनी ओर मिला लिया है! गाँव का एक आदमी भी हमारा साथ देने को तैयार नहीं है।

बसावन—(क्रोध से) चौधरी जी आप भी...

चौधरी—मैं हर तरह तैयार हूँ बसावन! आचार्यजी के लिए मैं अपनी जान तक निछावर कर सकता हूँ, लेकिन अकेला चना भाड़ तो नहीं फोड़ सकता?

बसावन—बस बस, अब अधिक मत बोलिये चौधरी जी, भगवान के लिए अब चुप रहिये। देख ली आप की चौधराई और किसानों की ताकत! जरा-जरा सी बात के लिए झूठ बोलने और बेईमानी करने वाले किसानों से बहादुरी और त्याग की आशा करना ही गलत था।

चौधरी—मगर मैं आचार्यजी को यह सलाह देने आया हूँ कि अब सेठ से झगड़ा बढ़ाने से क्या फायदा है?

बसावन—चौधरीजी, आचार्यजी आपकी तरह बेपेंदी के लोटे नहीं हैं कि कल इस करवट और आज इस करवट। उनकी आँखों पर आपके किसान भाइयों की तरह चाँदी का सफेद परदा नही पड़ा है कि अपना हित-अनहित कुछ सूझे ही नहीं। आप शौक से जाइये और सेठ लक्ष्मीपतिके तलवे सहलाइये। जाइये उधर जहाँ सेठ का दरबार लगने जा रहा है।

मजदूर—लेकिन बात सोचने की है बसावन!

बसावन—(आश्चर्य से उनकी ओर देखकर) अभी हमको और कुछ सोचना-समझना बाकी है भाई! कल रात को सभा के बाद भी?

[बाहर से राजेन्द्र और मैनेजर का प्रवेश। सभी चुप हो जाते हैं।]

राजेन्द्र—(व्यस्ततापूर्वक) अरे आप लोग यहाँ क्या कर रहे हैं? चलिये, चलिये सभा में बैठिए—मिनिस्टर साहब के आने में अब देर

नहीं है। (चौधरी और उसका साथी मजदूर दोनों जाते हैं। मैनेजर स्थिति को काबू में लाने के लिए बात बनाता है।)

मैनेजर—राजेन्द्रजी, आपने इन्हें पहचाना नहीं शायद, ये कामरेड बसावन हैं, लाल यूनियन के प्रेसीडेण्ट और यह रज्जाक, इनका साथी। हाँ भाई, देखो हम आचार्यजी को सभा में ले जाने के लिए यहाँ आये हैं।

बसावन—तो यों कहिये मैनेजर साहब कि आप आचार्यजी को चिढ़ाने आये हैं।

राजेन्द्र—चिढ़ाने ? क्या कह रहे हैं आप ?....मैं तो चाहता था कि... [एकाएक कविता भीतर से कुछ कहने के लिए जल्दी-जल्दी आती है, किन्तु राजेन्द्र और मैनेजर को देखकर ठिठक जाती है। राजेन्द्र कविता को देखकर दूने उत्साह से बोलने लगता है।] आइये कविता जी ! कल तो आप लोगों ने कमाल कर दिया। लेकिन अन्त में जरा आनन्द किरकिरा हो गया। फिर भी 'देश-सेवक' में मैंने उसकी बड़ी ही सुन्दर रिपोर्टिंग की है। तो मैं आज की सभा में आपको और आचार्य जी को विशेष रूप से आमंत्रित करने आया हूँ।

कविता—आपने जो खबर छापी है उसके लिए धन्यवाद ! झूठे का नौकर झूठा ही होता है। सेठजी ने भेजा है आपको ?

मैनेजर—जी हाँ, जी हाँ....

राजेन्द्र—यही समझ लीजिये। मगर सच्ची बात तो यह है कि जब से मैंने आप लोगों की कला की करामात देखी है, मेरे मन में यही इच्छा बार-बार जोर मारती है कि किसी समय मिनिस्टर साहब को भी आपका कला-प्रदर्शन देखने का अवसर मिलता, लेकिन वह तो बाद में कभी होता रहेगा। आज तो मैं आप लोगों को उनसे मिला देना भर चाहता हूँ। सच मानिये, हमारे मिनिस्टर साहब इतने बड़े कलाप्रेमी हैं, इतने बड़े....

कविता—जितने बड़े आपके सेठजी भी नहीं हैं, क्यों !

बसावन—तब तो बड़ी मुश्किल है दीदी। सेठजी तो कलाकार की पूजा

ईंट-पत्थरों से ही करते हैं मिनिस्टर साहब की कृपादृष्टि कहीं आप पर हो गयी तब तो....

कविता—जब सेठजी की यह दशा है, तब मिनिस्टर के पास तो बसावन भाई, पुलिस है, पल्टन है, बन्दूकें हैं, रहने के लिए हवालातें और जेलखाने हैं। उनकी कृपा और हमारे भाग्य—हा....हा...हा...

राजेन्द्र—कविता देवी, आप तो मजाक कर रही हैं। मैं आपसे सच कह रहा हूँ, मजाक करने का समय नहीं है। बस बीस मिनट में मिनिस्टर साहब आ जायँगे सभा-मण्डप खचाखच भरा है मजदूरों और किसानों से।

मैनेजर राजेन्द्रजी, अब देर करना ठीक नहीं है। देवीजी, आचार्यजी कहाँ हैं?

बसावन—आप लोगों ने एकबार तो आचार्य जी का स्वागत ईंट-पत्थर से किया, अब क्या उन्हें...

कविता—चुप रहो बसावन। मैनेजर साहब, बाबा को हालत चिन्ताजनक है। डाक्टर ने उन्हें किसी से मिलने-जुलने से मना किया है, आपको जो कहना हो मुझसे कहिये।

राजेन्द्र—तो आप हो चलिये, कला देवी को भी ले लीजिये।

कविता—कला ही नहीं राजेन्द्रजी, हम सभी आ रहे हैं; लेकिन आपका मेहमान बनकर नहीं। हम आपकी सभा में विरोधप्रदर्शन कर के मिनिस्टर साहब तक अपनी आवाज पहुँचायेंगे। आप जाइये और हमारे विरोध को रोकने की जो भी तैयारी करनी हो, खुशी से कीजिये। बाबा की यही आज्ञा है। मैं अभी इसकी सूचना आपको भेजने वाली थी।

राजेन्द्र—विरोध प्रदर्शन?

कविता—जी हाँ, विरोधप्रदर्शन और सत्याग्रह!

राजेन्द्र—सत्याग्रह?

मैनेजर—(उद्विग्नतापूर्वक) चलिये राजेन्द्रजी, यहाँ अब समय गंवाना बेकार है।

बसावन—और सेठजी से कह दीजियेगा मैनेजर साहब कि आज उनकी पिस्तौल वेकार साबित होगी।

कविता—बसावन ! [बसावन चुप हो जाता है। राजेन्द्र और मैनेजर बाहर निकल जाते हैं। कविता उनकी ओर देखती रहती है और फिर बसावन की ओर देखकर कहती है।] यह तुमने क्या कह दिया बसावन ?

बसावन—दीदी, मैं देखता हूँ कि हमारे तुम्हारे रास्ते बिलकुल अलग-अलग हैं।

कविता—लेकिन हमारा लक्ष्य एक है बसावन। और लक्ष्य की एकता होने पर रास्ते का भेद महत्वपूर्ण नहीं होता। रास्ते बदले भी जा सकते हैं।

बसावन—माफ करो दीदी, अब रास्ता बदलने का न तो समय है और न जरूरत।

कविता—(व्यंग्यपूर्वक) इसका मतलब यह कि तुम्हारा ध्यान लक्ष्य की ओर नहीं है ! बदले की भावना ने तुम्हे पागल बना दिया है। जो कुछ हम करने जा रहे हैं उसका नतीजा...

बसावन—नतीजे की बात कायर सोचते हैं। दीदी, लड़ाई के मैदान में नतीजा सोचने की फुरसत नहीं होती। चलो रज्जाक...भोला !

रज्जाक—तो फिर जल्दी हमारे साथी हमारा रास्ता देख रहे होंगे।

[दोनों जाना चाहते हैं]

कविता—ठहरो, आखिर तुम लोग करने क्या जा रहे हो ? बाबा से तो मिल लो, उन्होंने बुलाया है तुम्हें।

बसावन—दीदी, अभी थोड़ी देर में मालूम हो जायेगा कि हम क्या करने जा रहे हैं। लेकिन आचार्यजी की जिम्मेदारी तुम्हारे ऊपर है, उन्हे कुछ न होने पाये। उनसे कह देना कि हम उन्हीं का काम पूरा करने जा रहे हैं। चलो रज्जाक !

[सभी निकल जाते हैं। कविता चिन्तित सो उसी ओर देखती रह जाती है ! आँखे झुक जाती हैं। सहसा उसी समय भूपति सिंह का प्रवेश !

कविता इस तरह ध्यानमग्न है कि उनका आना नहीं जानती। मूर्तिवत खड़ी है।]

भूपति—कविता...

कविता—(चौंककर) आप, राय साहब ! बाबा की मरहम-पट्टी करने आये हैं ?

भूपति—नहीं कविता, अपने घावों की मरहम-पट्टी करने।

कविता—वे घाव आपने खुद किये हैं राय साहब ! उनकी मरहम-पट्टी आपके घर पर ही हो सकती थी। यहाँ आने की क्या जरूरत थी ?

भूपति—क्या यह तुम्हारा अन्तिम उत्तर है ?

कविता—अन्तिम तो कुछ और होगा राय साहब ! अभी तो यह पहला उत्तर है।

भूपति—तो ठीक है। अन्तिम की प्रतीक्षा भी मैं नहीं करूँगा। यह पहला ही उत्तर पर्याप्त है। और उसका प्रत्युत्तर तुम्हारे इस उत्तर से भी कड़ुवा होगा, जहर जैसा कड़ुवा। फिर मुझे दोष न देना।

कविता—जमीदार एसोसियेशन वाले भाषण या तो सरकार के लिये उचित होते हैं या किसानों को डराने के लिए। आप लोगों का दरबार अब धूल में मिल चुका है राय साहब। शायद इसे भूल गये आप ! रस्सी जल जाती है पर ऐंठन नहीं जाती !

भूपति—(क्रोध से तड़पकर) कविता ! परिणाम सोचकर बातें करो। यह न भूलो कि तुम मेरी आश्रिता हो। यह आश्रम, यह बाग, यह मकान, सब मेरे हैं।

कविता—राय साहब, स्वार्थ और वासना को झूठे अभिमान का मुकुट मत पहनाइये। आज हम आपके दरबार से निकल कर जनता के दरबार में आगये हैं। आप इस बाग और मकान को अपना कहते हैं, सेठजी अपना कहते हैं, लेकिन यह न तो आपका है, न सेठ लक्ष्मीपति का। यह जनता का है, जनता के सेवकों का है। यह हमारा है राय साहब।

भूपति—यह तुम नहीं बोल रही हो कविता, ज्ञानचन्द्र बोल रहा है। उसकी सीख का फल भोगने को तैयार हो जाओ। मगर आखिरी बार मैं फिर कहे जा रहा हूँ कि अन्त में तुम मेरे पास आओगी, तुम्हारे पिताजी को इसी जली रस्सी में फिर बँधना होगा।

कविता—धन्यवाद राय साहब ! जाइये और सेठ लक्ष्मीपति से समझौता करके रुपये ऐंठिये। यहाँ आकर आपने बड़ा उपकार किया जो मेरी आँखें खोल दीं।

रायसाहब—(जाते-जाते) पहले के उपकार का जो बदला तुमने चुकाया है, वही मेरे लिए बहुत है।

कविता—राय साहब, उपकार से प्रेम नहीं खरीदा जाता है और न धमकी से प्रेम डरता है। आज हम मुक्त हुए, आपने पिछले उपकारों से आज स्वयं हमें मुक्त कर दिया। अब आप जाइये, मिनिस्टर साहब आ गये होंगे। [मुँह फेर लेती है। भूपति पाँव पटकता हुआ चला जाता है। पीछे से 'भारत माता की जय' 'इनक्लाब जिन्दाबाद' 'महात्मा गांधी की जय' 'जवाहरलाल नेहरू की जय' आदि नारे सुनाई पड़ते हैं। कविता घबड़ाकर इधर-उधर देखती, फिर रास्ते की ओर उत्सुकतापूर्वक देखती और सोचती है, फिर तेजी से भीतर की ओर चली जाती है। बसावन तथा तीन चार मजदूरों का प्रवेश]

बसावन—यह अच्छा है कि यहाँ कोई नहीं है। हाँ गोवर्धन, कैसे हुआ यह काम ?

गोवर्धन—मैं रात से ही इसी फिराक में था। इधर जब सब लोग सभा में चले आये और रुई गोदाम का चपरासी थोड़ी देर के लिए अपने क्वार्टर में गया, मैंने अपनी चाभी से दरवाजा खोलकर आग लगा दी और तुरन्त वहाँ से नौ-दो ग्यारह हुआ। (सब हँसते हैं।)

बसावन—शाबास...आग तो अब तक अच्छी तरह लग गयी होगी ?

दूसरा मजदूर—यह तो अभी मालूम हुआ जाता है भैया ! हाथ कंगन को आरसी क्या ? मगर अब ?

बसावन—तुम लोग तुरन्त सभा में चले जाओ। अभी-अभी मिनिस्टर साहब आये हैं। थोड़ी देर में उनका स्वागत करने के लिए सेठ खड़ा होगा। उस समय तुम लोग खड़े होकर "सेठ बेईमान है, मिल किसकी मजदूरों की" यही सब नारे लगाकर हल्ला शुरू कर देना और भीड़ को चीरते हुए सेठ की ओर बढ़ना।

गोवर्धन—और अगर दूसरे मजदूर हमारा विरोध करें?

बसावन—कोई बात नहीं। तुम उन्हीं से लड़ने लगना। सारी पुलिस तुम्हारी ओर आ जायगी। सेठ इधर-उधर दौड़ने लगेगा और मुझे उस पर वार करने का मौका मिल जायगा। अब तुम लोग जल्दी जाओ। (दोनों चले जाते हैं।)

रज्जाक—तो हम लोग भी चलें बसावन भाई।

बसावन—नहीं रज्जाक...सेठ के आदमी हमारी ही तलाश में होंगे। गड़बड़ी शुरू होने के बाद हमलोग यहाँ से चलेंगे।

(नेपथ्य से कई आवाजें—'दौड़ो, दौड़ो, आग लग गइ, रुई गोदाम में आग लग गयी' लाउडस्पीकर पर आवाज 'भाइयो किसी देशद्रोही ने मिल के रुई-गोदाम में आग लगा दी है, लेकिन आप शान्त बैठे रहिए, आग बुझाई जा रही है। आग अभी फैलने नहीं पाई थी। अब सभा का काम शुरू होगा। पहले सेठ लक्ष्मीपति मिनिस्टर साहब का स्वागत करेंगे।')

रज्जाक—बसावन, इसका मतलब कि आग लगने से सेठ का कुछ भी नहीं बिगड़ा।

बसावन—(आतुर होकर) रज्जाक, मालूम होता है किस्मत सेठ का ही साथ दे रही है। मगर दोस्त, चलो हम भाग्य से भी लड़ेंगे, हम भाग्य से लड़ेंगे रज्जाक! (दोनों आगे बढ़ते हैं। तब तक ज्ञानचन्द्र और विज्ञानप्रकाश का प्रवेश।)

ज्ञानचन्द्र—बसावन!

विज्ञानप्रकाश—आचार्य जी अब कैसे हैं बसावन!

बसावन—ज्ञानबाबू! आप आ गये ज्ञानबाबू! आचार्य जी की हालत ठीक नहीं है [नेपथ्य से शोरगुल...नारे लगने की आवाजें।] बस अशीर्वाद दो ज्ञानबाबू कि मैं काम पूरा कर सकूँ!

ज्ञानचन्द्र—कैसा काम बसावन? कहाँ जा रहे हो तुम?

बसावन (पास आकर उन्मत्त की तरह) खून करने....सेठ का खून करने. आचार्यजी का बदला लेने।

विज्ञानप्रकाश—कैसे खून करोगे बसावन? ढेलों से खून नहीं होता।

[बसावन और रज्जाक दोनो कमर से छुरे निकाल लेते हैं।]

बसावन—हमारी संगिनी यह है विज्ञानबाबू! चलो रज्जाक। (दोनों फुर्ती से निकल जाते हैं। आश्रम में से कविता दौड़ी हुई आती है।)

कविता—(दोनों को देखकर स्तब्ध-सी रह जाती, फिर सँभलकर) ज्ञान बाबू! आ गये ज्ञानबाबू?

विज्ञानप्रकाश—आचार्यजी कैसे हैं कविता?

कविता—ठीक हैं, मगर....मगर ठीक नहीं हैं....नहीं हैं। आपने इतनी देर क्यों लगा दी विज्ञानबाबू? आप तो बारह बजे ही आने को कह गये थे।

विज्ञानप्रकाश—सिविल सर्जन की रिपोर्ट लेने में देर हुई। कलक्टर ने मेरी सारी बातें सुनकर सिविल सर्जन के ऊपर सब छोड़ दिया। फिर छुटकारे का आर्डर कराने और पागलखाने जाकर इन्हें लाने में काफी देर हो गयी। वहाँ से हम लोग सीधे आ रहे हैं।

ज्ञानचंद्र - आचार्यजी के बारे में साफ-साफ क्यों नहीं बताती कविता?

कविता—बाबा अब पूरी तरह होश में हैं, मगर कमजोरी बहुत अधिक है। पर ऐसी हालत में भी वे कहते हैं कि मुझे सभा में ले चलो।

ज्ञानचंद्र—सभा में? क्या करेंगे सभा में?

कविता—विरोध प्रदर्शन करने....किसानों की आवाज ऊँची कराने।

बसावन न जाने क्या करने जा रहा है, इसी से और भी उत्तेजित हो उठे हैं। वो बसावन को रोकना चाहते हैं।

ज्ञानप्रकाश—लेकिन बसाबन तो अब गया.. उसे जो कुछ करना है करने दो कविता....चलिए ज्ञानचंद्रजी, पहले हम आचार्य जी को सभालें।

कविता—नहीं विज्ञानबाबू, बसावन को रोकना होगा, नहीं तो इसका सारा कलङ्क बाबा के सर ही मढ़ा जायगा! आप जाकर उसे रोकिये।

ज्ञानचंद्र—नहीं कविता, बसावन को करने दो जो करना चाहता है। लेकिन फैक्टरियों का शिलान्यास!... यह नहीं होने देना है कविता, यही नहीं होने देना है। बसावन उसे रोक सकेगा, नहीं रोक सकेगा, नहीं रोक सकेगी उसकी कटार!

कविता—कटार!

ज्ञानचंद्र—मैं जाऊँगा कविता....मैं सभा के सामने ही दूसरी सभा करूँगा, अपनी बात जनता तक पहुँचाऊँगा, सत्याग्रह करूँगा, जेल जाऊँगा, गोली खाऊँगा, मगर आज यहाँ शिलान्यास नहीं होने दूँगा।

विज्ञानप्रकाश—ज्ञानचन्द्रजी, अभी तो आप आचार्यजी से मिलिये, फिर बाद में जो इच्छा हो, कीजियेगा।

कविता—हाँ ज्ञानबाबू, चलिये पहले बाबा के पास।

[नेपथ्य से शोरगुल और नारों की आवाज—'सेठ बेईमान है। नयी फैक्टरी नहीं बनने देंगे—मिनिस्टर साहब वापस जायँ'। शोर बढ़ता जाता है।]

ज्ञानचंद्र—तो पहले वहीं चलिए, लेकिन जल्दी, पता नहीं सभा में क्या हो रहा है? (तीनों भीतर जाते हैं। नेपथ्य से आवाजें—भागो भागो लाठी चल गयी।' कुछ किसान भाग कर सामने आते हैं।)

एक किसान—चौधरीजी, अब यहाँ मत रहिये, सीधे घर की ओर भागिये।

सोलई—नहीं भाई, आचार्यजी को एक जरूरी खबर देनी है!

दूसरा किसान—कैसी खबर ?

सोलई—अरे भाइ, मैं आगे ही बैठा था न ? वहां राय साहब और सेठजी घुल-मिल कर बातें कर रहे थे ! इस आश्रम को खाली करने की बात थी शायद।

पहला किसान—अरे चौधरी जी भागिये यहां से, पुलिस के डंडे तड़ातड़ पड़ रहे हैं। कहीं गोली न चल जाय। [गोली चलने की तड़तड़ाहट।]

सोलई—(हाँफते हुए) लो, गोली चल गयी। भागो—जल्दी भागो !

[सभी भाग जाते हैं। भीतर से विज्ञान प्रकाश, ज्ञानचंद्र कविता और कला एक खाट पर प्रजापति को उठा कर लाते हैं। प्रजापति के सिर में मोटी पट्टी बँधी है जिससे सिर्फ उनका मुँह दिखलाई पड़ता है]

प्रजापति—(तकिये से सिर ऊपर उठाते हुए) जल्दी करो। मुझे ले चलो वहाँ ओह, गोली चल गयी—मगर बेचारे मजदूर किसान....और मैं यहां चारपाई पर....नहीं—

[कुछ मजदूरों का भागते और चिल्लाते हुए प्रवेश, भागिये भागिये पुलिस पीछा करती हुई इधर हो आ रही है [' दूसरी ओर निकल जाते हैं।)

विज्ञानप्रकाश—रख दीजिये चारपाई कविता देवी। वहाँ चलना खतरे से खाली नहीं है, सो भी बीमार आदमी को लेकर। [चारपाई जमीन पर रख दी जाती है।]

प्रजापति—नहीं नहीं, मैं जाऊँगा, मुझे ले चलो ! ज्ञान बाबू, मुझे ले चलो।

ज्ञानचंद्र—अब आप का जाना वहाँ बेकार है आचार्य जी ! आप लोग यहीं रहिये। मैं अकेले जाऊँगा।

कविता—नहीं ज्ञानबाबू, आप भी मत जाइये। बाबा, आप हठ मत कीजिए। चलिये भीतर...

प्रजापति – नहीं ले चलोगे तुम लोग ? तो फिर मैं खुद चला जाऊँगा। बेटी कला, तुम मुझे सहारा देना...बेटी....

कला— बाबा...बाबा ।

प्रजापति— पगली....चलो मैं तुम्हें भी साथ ले चलूँगा—संघर्ष में तेरी कला का रूप....निखरेगा...मेरी कला को शक्ति मिलेगी....

[उठना चाहता है—तब तक कुछ मजदूरों के साथ भोला का दौड़ते-चिल्लाते हुए प्रवेश !]

भोला मार डाला....पुलिस ने मार डाला ।

ज्ञानचंद्र—(सबको रोकते हुए) रुको....किसको मार डाला पुलिस ने ?

भोला—बसावन और रज्जाक को ।

कविता —और सेठ का क्या हुआ भोला ?

भोला- (हांफते हुए) सेठ का ? सेठ का कुछ भी नहीं हुआ, बाल भी बांका न हुआ । जब मिनिस्टर जल्दी-जल्दी नींव का पत्थर रख रहा था—हम उस ओर टूट पड़े और तभी पुलिस ने फायर शुरू कर दिया ।

विज्ञानप्रकाश—बसावान भी तुम्हारे ही साथ था ?

भोलासिंह—नहीं भैया, न जाने वे दोनों किधर से हमारे सामने आ गये और गोली लगते ही गिर पड़े ।आगे बढ़ नहीं सके—और हम पुलिस का घेरा तोड़ कर भागे आ रहे हैं । आप लोग भीतर जाइये—यहां मत रहिये, पुलिस आ रही है ।

प्रजापति—बसावन, रज्जाक...तुम...दोनों भाग्यवान थे । ज्ञानबाबू, अब मैं नहीं रह सकता—जाऊँगा मैं भी......(झटका देकर उठ खड़ा होता है ।)

विज्ञानप्रकाश—यह क्या कर रहे हैं आप ?

प्रजापति—कला... कहाँ हो कला...आह

ज्ञानचंद्र—तो फिर आइये, चलिए मेरे साथ, [सहारा देकर आगे

ढ़ता है, तब तक बाहर से पुलिस फोर्स के साथ मैनेजर का प्रवेश ।]

इन्स्पेक्टर—रुकिये....प्रजापति किसका नाम है ?

मैनेजर—[प्रजापति की ओर इशारा करके] आप ही हैं।

ज्ञानचन्द्र—क्या बात है मैनेजर साहब ?

मैनेजर— ज्ञानबाबू ! आप ?....यहाँ ?

ज्ञानचन्द्र— जो हाँ, मगर आप यहाँ कैसे ? अब प्रजापतिजी को जेल भेजने का इरादा है क्या ? मारपीट से सन्तोष नहीं हुआ ?

मैनेजर— छोटे बाबू, सेठजी बहुत खुश हैं, उन्होंने आचार्य जी के पास यह सन्देश भेजा है कि नयी फैक्टरियों की नींव पड़ गयी।

प्रजापति— नींव पड़ गयी मैनेजर साहब ? मजदूरों और किसानों की लाश पर सेठजी की फैक्टरियों की नींव पड़ गयीं ?

कविता—बाबा, आप अधिक मत बोलिए, चलिये हम आपको भीतर ले चलें।

इंस्पेक्टर— नहीं—अब आप लोग इस मकान के भीतर नहीं जा सकते। मुझे हुक्म हुआ है कि यह मकान तुरन्त खाली करा दिया जाय। [सिपाहियों से] भीतर से सब सामान बाहर निकालो, जल्दी करो।

विज्ञानप्रकाश—इन्सपेक्टर साहब, अभी कचहरी का फैसला होना बाकी है।

मैनेजर—जी नहीं, विज्ञानप्रकाशजी, फैसला हो गया। आज रायसाहब और सेठजी के बीच समझौता हो गया है। रायसाहब ने अपनी आपत्ति वापस ले ली है। यह है मकान खाली कराने का हुक्म ?

प्रजापति -- रायसाहब और सेठजी, जमींदार और साहूकार। कविता बेटी, कला...जनता के दरबार में चलो—छोड़ दो यह मकान....लगा दो आग उन पुराने सम्बन्धों में (सिपाही और सेठ के आदमी आश्रम के भीतर से तस्वीरें, मूर्तियां, वाद्ययन्त्र और पुस्तकें ला लाकर ढेर लगाते जा रहे हैं।)

आग लगा दो उन पुस्तकों में, तोड़-फोड़ डालो इन तस्वीरों और मूर्तियों को जिनमें जमींदारों और रायसाहबों की छाया का स्पर्श है ?

कविता—बाबा...बाबा...

प्रजापति—नये चित्र बनाओ कला नयी मूर्ति गढ़ो कविता ! नये गीत, नये महाकाव्य की रचना करो जिसमें इन पापी जमींदारों और सेठों का नाश करने की ताकत हो ।

ज्ञानचन्द्र—आचार्य जी आप आराम कीजिए ।

प्रजापति—आराम—हा...हा...मैं तो आराम ही करने जा रहा हूँ बेटा, मगर ...मगर....विज्ञानप्रकाश ...ज्ञानचन्द्र...कविता....कला, तुम चारों मिल कर नयी दुनिया बनाओ जिसमें धरती और आकाश के बीच की दूरी मिट जाय...तुम चारों...

[गिर पड़ता है। कविता और कला 'बाबा बाबा कहती दौड़ती हैं। ज्ञान, विज्ञान, कविता, कला, चारों मिलकर उसे चारपाई पर लिटाते हैं ।

[परदा गिरता है ।]

———



समकालीन प्रकाशन

उद्देश्य

लेखकों के अधिकारों, हितों और विचारस्वातन्त्र्य का संरक्षण, उन्हें शोषण से मुक्त करना तथा परस्पर सहयोग एवं स्वावलम्बन के पथपर अग्रसर करना, हिन्दी साहित्य का सर्वांगीण सम्वर्धन।

•

कार्यालय

सी० १४/१६० सत्याग्रह मार्ग,

वाराणसी-२

•

आवरण मुद्रक-खण्डेलवाल प्रेस, मानमन्दिर, वाराणसी।